हरे कृष्ण

श्रीमद् भगवत गीता

अध्याय 13

|| प्रकृति, पुरुष तथा चेतना ||

designed by
DigitalWebdia | bhaktiprasad.in

1.

bhaktiprasad.in

अर्जुन उवाच

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च |
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ||13.1||

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते |
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ||13.2 ||

अर्जुन ने कहा - हे कृष्ण! मैं प्रकृति एवं पुरुष (भोक्ता), क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञान एवं ज्ञेय के विषय में जानने का इच्छुक हूँ | श्रीभगवान् ने कहा - हे कुन्तीपुत्र! यह शरीर क्षेत्र कहलाता है और इस क्षेत्र को जानने वाला क्षेत्रज्ञ है |

Designed by DigitalWebdia.com

1-2.

bhaktiprasad.in

अर्जुन उवाच

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च |
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ||13.1||

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते |
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ||13.2 ||

Arjuna said: O my dear Kṛṣṇa, I wish to know about prakṛti [nature], Puruṣa [the enjoyer], and the field and the knower of the field, and of knowledge and the end of knowledge. **The Blessed Lord then said:** This body, O son of Kuntī, is called the field, and one who knows this body is called the knower of the field.

Designed by DigitalWebdia .com

1.

तात्पर्य

अर्जुन प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान तथा ज्ञेय के विषय में जानने का इच्छुक था | जब उसने इन सबों के विषय में पूछा, तो कृष्ण ने कहा कि यह शरीर क्षेत्र कहलाता है, और इस शरीर को जानने वाला क्षेत्रज्ञ है | यह शरीर बद्धजीव के लिए कर्म-क्षेत्र है | बद्धजीव इस संसार में बँधा हुआ है, और वह भौतिक प्रकृति पर अपना प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न करता है | इस प्रकार प्रकृति पर प्रभुत्व दिखाने की क्षमता के अनुसार उसे कर्म-क्षेत्र प्राप्त होता है | यह कर्म-क्षेत्र शरीर है | और यह शरीर क्या है? शरीर इन्द्रियों से बना हुआ है | बद्धजिव इन्द्रियतृप्ति चाहता है, और इन्द्रियतृप्ति को भोगने की क्षमता के अनुसार ही उसे शरीर या कर्म-क्षेत्र प्रदान किया जाता अहि | इसीलिए बद्धजीव के लिए यह शरीर क्षेत्र अथवा कर्मक्षेत्र कहलाता है | अब, जो व्यक्ति अपने आपको शरीर मानता है, वह क्षेत्रज्ञ कहलाता है | क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ अथवा शरीर और शरीर के ज्ञाता (देही) का अन्तर समझ पाना कठिन नहीं है | कोई भी व्यक्ति यह सोच सकता है कि बाल्यकाल से वृद्धावस्था तक उसमें अनेक परिवर्तन होते रहते हैं, फिर भी वह व्यक्ति वही रहता है | इस प्रकार कर्म-क्षेत्र के ज्ञाता तथा वास्तविक कर्म-क्षेत्र में अन्तर है | एक बद्धजीव यह जान सकता है कि वह अपने शरीर से भिन्न है | प्रारम्भ में ही बताया गया है कि देहिनोऽस्मिन् - जीव शरीरके भीतर है, और यह शरीर बालक से किशोर, किशोर से तरुण तथा तरुण से वृद्ध के रूप में बदलता जाता है , और शरीरधारी जानता है कि शरीर परिवर्तित हो रहा है | स्वामी स्पष्टतः क्षेत्रज्ञ है | कभी कभी हम सोचते हैं 'मैं सुखी हूँ', 'मैं पुरुष हूँ', 'मैं स्त्री हूँ', 'मैं कुत्ता हूँ', 'मैं बिल्ली हूँ' |

तात्पर्य

ये ज्ञाता की शारीरिक अपाधियाँ हैं, लेकिन ज्ञाता शरीर से भिन्न होता है | भले ही हम तरह-तरह की वस्तुएँ प्रयोग में लाएँ - जैसे कपड़े इत्यादि, लेकिन हम जानते हैं कि हम इन वस्तुओं से भिन्न हैं | इसी प्रकार, थोड़ा विचार करने पर हम यह भी जानते हैं कि हम शरीर से भिन्न हैं | मैं, तुम या अन्य कोई, जिसने शरीर धारण कर रखा है, क्षेत्रज्ञ कहलाता है -अर्थात् वह कर्म-क्षेत्र का ज्ञाता है और यह शरीर क्षेत्र है - साक्षात् कर्म-क्षेत्र है | भगवद्गीता के प्रथम छह अध्यायों में शरीर के ज्ञाता (जीव), तथा जिस स्थिति में वह भगवान् को समझ सकता है, उसका वर्णन हुआ है | बीच के छह अध्यायों में भगवान् तथा भगवान् के साथ जीवात्मा के सम्बन्ध एवं भक्ति के प्रसंग में परमात्मा का वर्णन है | इन अध्यायों में भगवान् की श्रेष्ठता तथा जीव की अधीन अवस्था की निश्चित रूप से परिभाषा की गई है | जीवात्माएँ सभी प्रकार से अधीन हैं, और अपनी विस्मृति के कारण वे कष्ट उठा रही हैं | जब पुण्य कर्मों द्वारा उन्हें प्रकाश मिलता है, तो वे विभिन्न परिस्थितियों में - यथा आर्त, धनहीन, जिज्ञासु तथा ज्ञान-पिपासु के रूप में भगवान् के पास पहुँचती हैं, इसका भी वर्णन हुआ है | अब तेरहवें अध्याय से आगे इसकी व्याख्या हुई है कि किस प्रकार जीवात्मा प्रकृति के सम्पर्क में आता है, और किस प्रकार कर्म ,ज्ञान तथा भक्ति के विभिन्न साधनों के द्वारा परमेश्वर उसका उद्धार करते हैं | यद्यपि जीवात्मा भौतिक शरीर से सर्वथा भिन्न है, लेकिन वह किस तरह उससे सम्बद्ध हो जाता है, इसकी व्याख्या की गई है |

3.

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत |
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम || 13.3 ||

bhaktiprasad.in

हे भरतवंशी ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि मैं भी समस्त शरीरों में ज्ञाता भी हूँ और इस शरीर तथा इसके ज्ञाता को जान लेना ज्ञान कहलाता है | ऐसा मेरा मत है |

O scion of Bharata, you should understand that I am also the knower in all bodies, and to understand this body and its owner is called knowledge. That is My opinion.

Designed by DigitalWebdia.com

3.

तात्पर्य

शरीर, शरीर के ज्ञाता, आत्मा तथा परमात्मा विषयक व्याख्या के दौरान हमें तीन विभिन्न विषय मिलेंगे - भगवान्, जीव तथा पदार्थ | प्रत्येक कर्म-क्षेत्र में, प्रत्येक शरीर में दो आत्माएँ होती हैं - आत्मा तथा परमात्मा | चूँकि परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण का स्वांश है, अतः कृष्ण कहते हैं - 'मैं भी ज्ञाता हूँ, लेकिन मैं शरीर का व्यष्टि ज्ञाता नहीं हूँ | मैं परम ज्ञाता हूँ | मैं शरीर में परमात्मा के रूप में विद्यमान रहता हूँ |' जो क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का अध्ययन भगवद्गीता के माध्यम से सूक्ष्मता से करता है, उसे यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है | भगवान् कहते हैं, 'मैं प्रत्येक शरीर के कर्मक्षेत्र का ज्ञाता हूँ |' व्यक्ति भले ही अपने शरीर का ज्ञाता हो, किन्तु उसे अन्य शरीर का ज्ञान नहीं होता | समस्त शरीरों में परमात्मा रूप में विद्यमान भगवान् समस्त शरीरों के विषय में जानते हैं | वे जीवन की विविध योनियों के सभी शरीरों को जानने वाले हैं | एक नागरिक अपने भूमि-खण्ड के विषय में सब कुछ जानता है, लेकिन राजा को न केवल अपने महल का, अपितु प्रत्येक नागरिक की भू-सम्पत्ति का, ज्ञान रहता है | इसी प्रकार कोई भले ही अपने शरीर का स्वामी हो, लेकिन परमेश्वर समस्त शरीरों के अधिपति हैं | राजा अपने साम्राज्य का मूल अधिपति होता है और नागरिक गौण अधिपति | इसी प्रकार परमेश्वर समस्त शरीरों के परम अधिपति हैं | यह शरीर इन्द्रियों से युक्त है | परमेश्वर हृषीकेश हैं जिसका अर्थ है 'इन्द्रियों के नियामक' | वे इन्द्रियों के आदि नियामक हैं, जिस प्रकार राजा अपने राज्य की समस्त गतिविधियों का आदि नियामक होता है, नागरिक तो गौण नियामक होते हैं | भगवान् का कथन है, 'मैं ज्ञाता भी हूँ|'

तात्पर्य

व्यक्ति भले ही अपने शरीर का ज्ञाता हो, किन्तु उसे अन्य शरीर का ज्ञान नहीं होता | समस्त शरीरों में परमात्मा रूप में विद्यमान भगवान् समस्त शरीरों के विषय में जानते हैं | वे जीवन की विविध योनियों के सभी शरीरों को जानने वाले हैं | एक नागरिक अपने भूमि-खण्ड के विषय में सब कुछ जानता है, लेकिन राजा को न केवल अपने महल का, अपितु प्रत्येक नागरिक की भू-सम्पत्ति का, ज्ञान रहता है | इसी प्रकार कोई भले ही अपने शरीर का स्वामी हो, लेकिन परमेश्वर समस्त शरीरों के अधिपति हैं | राजा अपने साम्राज्य का मूल अधिपति होता है और नागरिक गौण अधिपति | इसी प्रकार परमेश्वर समस्त शरीरों के परम अधिपति हैं | यह शरीर इन्द्रियों से युक्त है | परमेश्वर हृषीकेश हैं जिसका अर्थ है 'इन्द्रियों के नियामक' | वे इन्द्रियों के आदि नियामक हैं, जिस प्रकार राजा अपने राज्य की समस्त गतिविधियों का आदि नियामक होता है, नागरिक तो गौण नियामक होते हैं | भगवान् का कथन है, 'मैं ज्ञाता भी हूँ|' इसका अर्थ है कि वे परम ज्ञाता हैं, जीवात्मा केवल अपने विशिष्ट शरीर को ही जानता है | वैदिक ग्रन्थों में इस प्रकार का वर्णन हुआ है - क्षेत्राणि हि शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभे | तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते || यह शरीर क्षेत्र कहलाता है, और इस शरीर के भीतर इसके स्वामी तथा साथ ही परमेश्वर का वास है, जो शरीर तथा शरीर के स्वामी दोनों को जानने वाला है | इसीलिए उन्हें समस्त क्षेत्रों का ज्ञाता कहा जाता है | कर्म क्षेत्र, कर्म के ज्ञाता तथा समस्त कर्मों के परम ज्ञाता का अन्तर आगे बतलाया जा रहा है |

तात्पर्य

वैदिक ग्रन्थों में शरीर, आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप की सम्यक जानकारी ज्ञान नाम से अभिहित की जाती है | ऐसा कृष्ण का मत है | आत्मा तथा परमात्मा को एक मानते हुए भी पृथक्-पृथक् समझना ज्ञान है | जो कर्मक्षेत्र तथा कर्म के ज्ञाता को नहीं समझता, उसे पूर्ण ज्ञान नहीं होता | मनुष्य को प्रकृति, पुरुष (प्रकृति के भोक्ता) तथा ईश्वर (वह ज्ञाता जो प्रकृति एवं व्यष्टि आत्मा का नियामक है) की स्थिति समझनी होती है | उसे इन तीनों के विभिन्न रूपों में किसी प्रकार का भ्रम पैदा नहीं करना चाहिए | मनुष्य को चित्रकार, चित्र तथा तूलिका में भ्रम नहीं करना चाहिए | यह भौतिक जगत्, जो कर्मक्षेत्र के रूप में है, प्रकृति है और इस प्रकृति का भोक्ता जीव है, और इन दोनों के ऊपर परम नियामक भगवान् हैं | वैदिक भाषा में इस प्रकार कहा गया है (श्वेताश्वतर उपनिषद् १.१२) - भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा | सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्| ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं - प्रकृति कर्मक्षेत्र के रूप में ब्रह्म हैं, तथा जीव भी ब्रह्म है जो भौतिक प्रकृति को अपने नियन्त्रण में रखने का प्रयत्न करता है, और इन दोनों का नियामक भी ब्रह्म है | लेकिन वास्तविक नियामक वही है | इस अध्याय में बताया जाएगा कि इन दोनों ज्ञाताओं में से एक अच्युत है, जो दूसरा चयुत | एक्स श्रेष्ठ है, तो दूसरा अधीन है | जो व्यक्ति क्षेत्र के इन दोनों ज्ञाताओं को एक मान लेता है, वह भगवान् के शब्दों का खण्डन करता है, क्योंकि उनका कथन है 'मैं भी कर्मक्षेत्र का ज्ञाता हूँ '| जो व्यक्ति रस्सी को सर्प जान लेता है वह ज्ञाता नहीं है | शरीर कई प्रकार के हैं और इसके स्वामी भी भिन्न-भिन्न हैं | चूँकि प्रत्येक जीव की अपनी निजी सत्ता है, जिससे वह प्रकृति पर प्रभुता की सामर्थ्य रखता है, अतएव शरीर विभिन्न होते हैं | लेकिन भगवान् उन सबमें परम नियन्ता के रूप में विद्यमान रहते हैं | यहाँ पर च शब्द महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह समस्त शरीरों का द्योतक है | यह श्रील बलदेव विद्याभूषण का मत है | आत्मा के अतिरिक्त प्रत्येक शरीर में कृष्ण परमात्मा के रूप में रहते हैं, और यहाँ पर कृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं कि परमात्मा कर्मक्षेत्र तथा विशिष्ट भोक्ता दोनों का नियामक है |

4.

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् |
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु || 13.4 ||

bhaktiprasad.in

अब तुम मुझसे यह सब संक्षेप में सुनो कि कर्म क्षेत्र क्या है, यह किस प्रकार बना है, इसमें क्या परिवर्तन होते हैं, यह कहाँ से उत्पन्न होता है, इस कर्म क्षेत्र को जानने वाला कौन है और उसके क्या प्रभाव हैं |

Now please hear My brief description of this field of activity and how it is constituted, what its changes are, whence it is produced, who that knower of the field of activities is, and what his influences are.

Designed by DigitalWebdia .com

4.

तात्पर्य

भगवान् कर्मक्षेत्र (क्षेत्र) तथा कर्मक्षेत्र के ज्ञाता (क्षेत्रज्ञ) की स्वाभाविक स्थितियों का वर्णन कर रहे हैं | मनुष्य को यह जानना होता है कि यह शरीर किस प्रकार बना हुआ है, यह शरीर किन पदार्थों से बना है, यह किसके नियन्त्रण में कार्यशील है, इसमें किस प्रकार परिवर्तन होते हैं, ये परिवर्तन कहाँ से आते हैं, वे कारण कौन से हैं, आत्मा का चरम लक्ष्य क्या है, तथा आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है ? मनुष्य को आत्मा तथा परमात्मा, उनके विभिन्न प्रभावों, उनकी शक्तियों आदि के अन्तर को भी जानना चाहिए | यदि वह भगवान् द्वारा दिए गये वर्णन के आधार पर भगवद्गीता समझ ले, तो ये सारी बातें स्पष्ट हो जाएँगी | लेकिन उसे ध्यान रखना होगा कि प्रत्येक शरीर में वास करने वाला परमात्मा को जीव का स्वरूप न मान बैठे | ऐसा तो सक्षम पुरुष तथा अक्षम पुरुष को एकसामान बताने जैसा है |

5.

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् |
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः || 13.5 ||

bhaktiprasad.in

विभिन्न वैदिक ग्रंथों में विभिन्न ऋषियों ने कार्यकलापों के क्षेत्र तथा उन कार्यकलापों के ज्ञाता के ज्ञान का वर्णन किया है | इसे विशेष रूप से वेदान्त सूत्र में कार्य-कारण के समस्त तर्क समेत प्रस्तुत किया गया है |

That knowledge of the field of activities and of the knower of activities is described by various sages in various Vedic writings-especially in the Vedānta-sūtra-and is presented with all reasoning as to cause and effect.

Designed by DigitalWebdia .com

तात्पर्य

इस ज्ञान की व्याख्या करने में भगवान् कृष्ण सर्वोच्च प्रमाण हैं | फिर भी विद्वान तथा प्रामाणिक लोग सदैव पूर्ववर्ती आचार्यों का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं | कृष्ण आत्मा तथा परमात्मा की द्वैतता तथा अद्वैतता सम्बन्धी इस अतीव विवादपूर्ण विषय की व्याख्या वेदान्त नामक शास्त्र का उल्लेख करते हुए कर रहे हैं, जिसे प्रमाण माना जाता है | सर्वप्रथम वे कहते हैं 'यह विभिन्न ऋषियों के मतानुसार है |' जहाँ तक ऋषियों का सम्बन्ध है, श्रीकृष्ण के अतिरिक्त व्यासदेव (जो वेदान्त सूत्र के रचयिता है) महान ऋषि हैं और वेदान्त सूत्र में द्वैत की भलीभाँति व्याख्या हुई है | व्यासदेव के पिता पराशर भी महर्षि हैं और उन्होंने धर्म सम्बन्धी अपने ग्रंथों में लिखा है - अहम् त्वं च तथान्ये - 'तुम, मैं तथा अन्य सारे जीव अर्थात् हम सभी दिव्य हैं, भले ही हमारे शरीर भौतिक हों | हम अपने अपने कर्मों के कारण प्रकृति के तीनों गुणों के वशीभूत होकर पतित हो गये हैं | फलतः कुछ लोग उच्चतर धरातल पर हैं और कुछ निम्नतर धरातल पर हैं | ये उच्चतर तथा निम्नतर धरातल अज्ञान के कारण हैं, और अनन्त जीवों के रूप में प्रकट हो रहे हैं | किन्तु परमात्मा, जो अच्युत हैं, तीनों गुणों से अदूषित है, और दिव्य है |' इसी प्रकार मूल वेदों में, विशेषतया कठोपनिषद् में आत्मा, परमात्मा तथा शरीर का अन्तर बताया गया है | इसके अतिरिक्त अनेक महर्षियों ने इसकी व्याख्या की है, जिनमें पराशर प्रमुख माने जाते हैं | छन्दोभिः शब्द विभिन्न वैदिक ग्रथों का सूचक है | उदाहरणार्थ, तैत्तरीय उपनिषद् जो यजुर्वेद की एक शाखा है, प्रकृति, जीव तथा भगवान् के विषय में वर्णन करती है | जैसा कि पहले कहा जा चुका है क्षेत्र का अर्थ कर्मक्षेत्र है |

तात्पर्य

क्षेत्रज्ञ की दो कोटियाँ है - जीवात्मा तथा परम पुरुष | जैसा कि तैत्तरीय उपनिषद् में (२.९) कहा गया है - ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा | भगवान् की शक्ति का प्राकट्य अन्नमय रूप में होता है, जिसका अर्थ है - अस्तित्व के लिए भोजन (अन्न) पर निर्भरता | यह ब्रह्म की भौतिकतावादी अनुभूति है | अन्न में परम सत्य की अनुभूति करने के पश्चात् फिर प्राणमय रूप में मनुष्य सजीव लक्षणों या जीवन रूपों में परम सत्य की अनुभूति करता है | ज्ञानमय रूप में यह अनुभूति सजीव लक्षणों से आगे बढ़कर चिन्तन, अनुभव तथा आकांक्षा तक पहुँचती है | तब ब्रह्म की उच्चतर अनुभूति होती है, जिसे विज्ञानमय रूप कहते हैं, जिससे जीव के मन तथा जीवन के लक्षणों को जीव से भिन्न समझा जाता है | उसके पश्चात् परम अवस्था आती है, जो आनन्दमय है, अर्थात् सर्व-आनन्दमय प्रकृति की अनुभूति है | इस प्रकार से ब्रह्म अनुभूति की पाँच अवस्थाएँ हैं, जिन्हें ब्रह्म पुच्छं कहा जाता है | इनमें से प्रथम तीन - अन्नमय, प्राणमय तथा ज्ञानमाय - अवस्थाएँ जीवों के कार्यकलापों के क्षेत्रों से सम्बन्धित होती है | परमेश्वर इन कार्यकलापों के क्षेत्रों से परे है, और आनन्दमय है | वेदान्त सूत्र भी परमेश्वर को आनन्दमयो ऽभ्यासात् कहकर पुकारता है | भगवान् स्वभाव से आनन्दमय हैं | अपने दिव्य आनन्द को भोगने के लिए वे विज्ञानमय, प्राणमय, ज्ञानमय तथा अन्नमय रूपों में विस्तार करते हैं | कार्यकलापों के क्षेत्र में जीव भोक्ता (क्षेत्रज्ञ) माना जाता है, किन्तु आनन्दमय उससे भिन्न होता है | इसका अर्थ यह हुआ कि यदि जीव आनन्दमय का अनुगमन करने में सुख मानता है, तो वह पूर्ण बन जाता है | क्षेत्र के ज्ञाता (क्षेत्रज्ञ) रूप में परमेश्वर की और उसके अधीन ज्ञाता के रूप में जीव की तथा कार्यकलापों के क्षेत्र की प्रकृति का यह वास्तविक ज्ञान है | वेदान्तसूत्र या ब्रह्मसूत्र में इस सत्य की गवेषणा करनी होगी |

6-7

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च |
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः || 13.6 ||
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः |
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् || 13.7 ||

पंच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त (तीनों गुणों की अप्रकट अवस्था), दसों इन्द्रियाँ तथा मन, पाँच इन्द्रियविषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, संघात, जीवन के लक्षण तथा धैर्य - इन सब को संक्षेप में कर्म का क्षेत्र तथा उसकी अन्तःक्रियाएँ (विकार) कहा जाता है |

The five great elements, false ego, intelligence, the unmanifested, the ten senses, the mind, the five sense objects, desire, hatred, happiness, distress, the aggregate, the life symptoms, and convictions-all these are considered, in summary, to be the field of activities and its interactions.

bhaktiprasad.in
Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

महर्षियों, वैदिक सूक्तों (छान्दस) एवं वेदान्त-सूत्र (सूत्रों) के प्रामाणिक कथनों के आधार पर इस संसार के अवयवों को इस प्रकार समझा जा सकता है | पहले तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश - ये पाँच महाभूत हैं | फिर अहंकार, बुद्धि तथा तीनों गुणों की अव्यक्त अवस्था आती है | इसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं - नेत्र, कान, नाक, जीभ तथा त्वचा | फिर पाँच कर्मेन्द्रियाँ - वाणी, पाँव, हाथ, गुदा तथा लिंग - हैं | तब इन इन्द्रियों के ऊपर मन होता है जो भीतर रहने के कारण अन्तःइन्द्रिय कहा जा सकता है | इस प्रकार मन समेत कुल ग्यारह इन्द्रियाँ होती हैं | फिर इन इन्द्रियों के पाँच विषय हैं - गंध, स्वाद, रूप, स्पर्श तथा ध्वनि | इस तरह इन चौबीस तत्त्वों का समूह कार्यक्षेत्र कहलाता है | यदि कोई इन चौबीसों विषयों का विश्लेषण करे तो उसे कार्यक्षेत्र समझ में आ जाएगा | फिर इच्छा, द्वेष, सुख तथा दुख नामक अन्तः-क्रियाएँ (विकार) हैं जो स्थूल देह के पाँच महाभूतों की अभिव्यक्तियाँ हैं | चेतना तथा धैर्य द्वारा प्रदर्शित जीवन के लक्षण सूक्ष्म शरीर अर्थात् मन, अहंकार तथा बुद्धि के प्राकट्य हैं | ये सूक्ष्म तत्त्व भी कर्मक्षेत्र में सम्मिलित रहते हैं |

तात्पर्य

पंच महाभूत अहंकार की स्थूल अभिव्यक्ति हैं, जो अहंकार की मूल अवस्था को ही प्रदर्शित करती है, जिसे भौतिकवादी बोध या तामस बुद्धि कहा जाता है |यह और आगे प्रकृति के तीनों गुणों की अप्रकट अवस्था की सूचक है | प्रकृति के अव्यक्त गुणों को प्रधान कहा जाता है |

जो व्यक्ति इन चौबीसों तत्त्वों को, उनके विकारों समेत जानना चाहता है, उसे विस्तार से दर्शन का अध्ययन करना चाहिए | भगवद्गीता के केवल सारांश दिया गया है |

शरीर इन समस्त तत्त्वों की अभिव्यक्ति है | शरीर में छह प्रकार के परिवर्तन होते हैं - यह उत्पन्न होता है, बढ़ता है, टिकता है, सन्तान उत्पन्न करता है और तब यह क्षीण होता है और अन्त में समाप्त हो जाता है | अतएव क्षेत्र अस्थायी भौतिक वस्तु है लेकिन क्षेत्र का ज्ञाता क्षेत्रज्ञ इससे भिन्न रहता है |

8-12.

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् |
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः || 13.8 ||

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च |
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् || 13.9 ||

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु |
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु || 13.10 ||

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी |
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि || 13.11 ||

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् |
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा || 13.12 ||

bhaktiprasad.in

Designed by DigitalWebdia .com

8-12.

bhaktiprasad.in

Humility, pridelessness, nonviolence, tolerance, simplicity, approaching a bona fide spiritual master, cleanliness, steadiness and self-control; renunciation of the objects of sense gratification, absence of false ego, the perception of the evil of birth, death, old age and disease; non-attachment to children, wife, home and the rest, and evenmindedness amid pleasant and unpleasant events; constant and unalloyed devotion to Me, resorting to solitary places, detachment from the general mass of people; accepting the importance of self-realization, and philosophical search for the Absolute Truth-all these I thus declare to be knowledge, and what is contrary to these is ignorance.

Designed by DigitalWebdia .com

8-12.

bhaktiprasad.in

विनम्रता, दम्भहीनता, अहिंसा, सहिष्णुता, सरलता, प्रामाणिक गुरु के पास जाना, पवित्रता, स्थिरता, आत्मसंयम, इन्द्रियतृप्ति के विषयों का परित्याग, अहंकार का अभाव, जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा रोग के दोषों की अनुभूति, वैराग्य, सन्तान, स्त्री, घर तथा अन्य वस्तुओं की ममता से मुक्ति, अच्छी तथा बुरी घटनाओं के प्रति समभाव, मेरे प्रति निरन्तर अनन्य भक्ति, एकान्त स्थान में रहने की इच्छा, जन समूह से विलगाव, आत्म-साक्षात्कार की महत्ता को स्वीकारना, तथा परम सत्य की दार्शनिक खोज - इन सबको मैं ज्ञान घोषित करता हूँ और इनके अतिरिक्त जो भी है, वह सब अज्ञान है |

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

कभी-कभी अल्पज्ञ लोग ज्ञान की इस प्रक्रिया को कार्यक्षेत्र की अन्तः-क्रिया (विकार) के रूप में मानने की भूल करते हैं | लेकिन वास्तव में यही असली ज्ञान की प्रक्रिया है | यदि कोई इस प्रक्रिया को स्वीकार कर लेता है, तो परम सत्य तक पहुँचने की सम्भावना हो जाती है | यह इसके पूर्व बताये गये चौबीस तत्त्वों का विकार नहीं है | यह वास्तव में इन तत्त्वों के पाश से बाहर निकलने का साधन है | देहधारी आत्माचौबीस तत्त्वों से बने आवरण रूप शरीर में बन्द रहता है और यहाँ पर ज्ञान की जिस प्रक्रिया का वर्णन है वह इससे बाहर निकलने का साधन है | ज्ञान की प्रक्रिया के सम्पूर्ण वर्णन में से ग्यारहवें श्लोक की प्रथम पंक्ति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है - मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी - 'ज्ञान की प्रक्रिया का अवसान भगवान् की अनन्य भक्ति में होता है |' अतएव यदि कोई भगवान् की दिव्य सेवा को नहीं प्राप्त कर पाता या प्राप्त करने में असमर्थ है, तो शेष उन्नीस बातें व्यर्थ हैं | लेकिन यदि कोई पूर्ण कृष्णभावना से भक्ति ग्रहण करता है, तो अन्य उन्नीस बातें उसके अन्दर स्वयमेव विकसित हो आती हैं | जैसा कि श्रीमद्भागवत में (५.१८.१२) कहा गया है - यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र सुराः | जिसने भक्ति की अवस्था प्राप्त कर ली है, उसमें ज्ञान के सारे गुण विकसित हो जाते हैं | जैसा कि आठवें श्लोक में उल्लेख हुआ है, गुरु-ग्रहण करने का सिद्धान्त अनिवार्य है | यहाँ तक कि जो भक्ति स्वीकार करते हैं, उनके लिए भी यह आवश्यक है | आध्यात्मिक जीवन का शुभारम्भ तभी होता है, जब प्रामाणिक गुरु ग्रहण किया जाय | भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पर स्पष्ट कहते हैं कि ज्ञान की यह प्रक्रिया ही वास्तविक मार्ग है | इससे परे जो भी विचार किया जाता है, व्यर्थ होता है |

तात्पर्य

यहाँ पर ज्ञान की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है उसका निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषण किया जा सकता है | विनम्रता (अमानित्व) का अर्थ है कि मनुष्य को, अन्यों द्वारा सम्मान पाने के लिए इच्छुक नहीं रहना चाहिए | हम देहात्मबुद्धि के कारण अन्यों से सम्मान पाने के भूखे रहते हैं, लेकिन पूर्णज्ञान से युक्त व्यक्ति की दृष्टि में, जो यह जानता है कि वह शरीर नहीं है, इस शरीर से सम्बद्ध कोई भी वस्तु, सम्मान या अपमान व्यर्थ होता है | इस भौतिक छल के पीछे-पीछे दौड़ने से कोई लाभ नहीं है | लोग अपने धर्म में प्रसिद्धि चाहते हैं, अतएव यह देखा गया है कि कोई व्यक्ति धर्म के सिद्धान्तों को जाने बिना ही ऐसे समुदाय में सम्मिलित हो जाता है, जो वास्तव में धार्मिक सिद्धान्तों का पालन नहीं करता और इस तरह वह धार्मिक गुरु के रूप में अपना प्रचार करना चाहता है | जहाँ तक आध्यात्मिक ज्ञान में वास्तविक प्रगति की बात है, मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी परीक्षा करे कि वह कहाँ तक उन्नति कर रहा है | वह इन बातों के द्वारा अपनी परीक्षा कर सकता है | अहिंसा का सामान्य अर्थ वध न करना या शरीर को कष्ट न करना लिया जाता है, लेकिन अहिंसा का वास्तविक अर्थ है, अन्यों को विपत्ति में न डालना | देहात्मबुद्धि के कारण सामान्य लोग अज्ञान द्वारा ग्रस्त रहते हैं और निरन्तर भौतिक कष्ट भोगते रहते हैं | अतएव जब तक कोई लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान की ओर ऊपर नहीं उठाता, तब तक वह हिंसा करता रहता होता है | व्यक्ति को लोगों में वास्तविक ज्ञान वितरित करने का भरसक प्रयास करना चाहिए जिससे वे प्रबुद्ध हों और इस भवबन्धन से छूट सकें | यही अहिंसा है |

तात्पर्य

सहिष्णुता (क्षान्तिः) का अर्थ है कि मनुष्य अन्यों द्वारा किये गये अपमान तथा निरस्कार को सहे | जो आध्यात्मिक ज्ञान की उन्नति करने में लगा रहता है, उसे अन्यों के निरस्कार तथा अपमान सहने पड़ते हैं | ऐसा इसलिए होता है क्योंकि यह भौतिक स्वभाव है | यहाँ तक कि बालक प्रह्लाद को भी जो पाँच वर्ष के थे और जो आध्यात्मिक ज्ञान के अनुशीलन में लगे थे संकट का सामना करना पड़ा था, जब उनका पिता उनकी भक्ति का विरोधी बन गया | उनके पिता ने उन्हें मारने के अनेक प्रयत्न किए, किन्तु प्रह्लाद ने सहन कर लिया | अतएव आध्यात्मिक ज्ञान की उन्नति करते हुए अनेक अवरोध आ सकते हैं, लेकिन हमें सहिष्णु बन कर संकल्पपूर्वक प्रगति करते रहना चाहिए | सरलता (आर्जवम्) का अर्थ है कि बिना किसी कूटनीति के मनुष्य इतना सरल हो कि अपने शत्रु तक से वास्तविक सत्य का उद्घाटन कर सके | जहाँ तक गुरु बनाने का प्रश्न है, (आचार्योपासनम्), आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति करने के लिए यह अत्यावश्यक है, क्योंकि बिना प्रामाणिक गुरु के यह सम्भव नहीं है | मनुष्य को चाहिए कि विनम्रतापूर्वक गुरु के पास जाए और उसे अपनी समस्त सेवाएँ अर्पित करे, जिससे वह शिष्य को अपना आशीर्वाद दे सके | चूँकि प्रामाणिक गुरु कृष्ण का प्रतिनिधि होता है,अतएव यदि वह शिष्य को आशीर्वाद देता है, तो शिष्य तुरन्त प्रगति करने लगता है, भले ही वह विधि-विधानों का पालन न करता रहा हो | अत्वे जो बिना किसी स्वार्थ के अपने गुरु की सेवा करता है, उसके लिए यम-नियम सरल बन जाते हैं | आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करने के लिए पवित्रता (शौचम्) अनिवार्य है | पवित्रता दो प्रकार की होती है - आन्तरिक तथा बाह्य | बाह्य पवित्रता का अर्थ है स्नान करना, लेकिन

तात्पर्य

आन्तरिक पवित्रता के लिए निरन्तर कृष्ण का चिन्तन तथा हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करना होता है | इस विधि से मन में से पूर्व कर्म की संचित धूलि हट जाती है | दृढ़ता (स्थैर्यम्) का अर्थ है कि आध्यात्मिक जीवन में उन्नति करने के लिए मनुष्य दृढ़संकल्प हो | ऐसे संकल्प के बिना मनुष्य ठोस प्रगति नहीं कर सकता | आत्मसंयम (आत्म-विनिग्रहः) का अर्थ है कि आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर जो भी बाधक हो, उसे स्वीकार न करना | मनुष्य को इसकाअभ्यस्त बन कर ऐसी किसी भीवस्तु को त्याग देना चाहिए, जो आध्यात्मिक उन्नति के पथ के प्रतिकूल जो | यह असली वैराग्य है | इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं कि सदैव इन्द्रियतृप्ति के लिए उत्सुक रहती हैं | अनावश्यक माँगों की पूर्ति नहीं करनी चाहिए | इन्द्रियों की उतनी ही तृप्ति की जानी चाहिए, जिससे आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने में अपने कर्त्तव्य की पूर्ति होती हो | सबसे महत्त्वपूर्ण, किन्तु वश में न आने वाली इन्द्रिय जीभ है | यदि जीभ पर संयम कर लिया गया तो समझो अन्य सारी इन्द्रियाँ वशीभूत हो गई | जीभ का कार्य है, स्वाद ग्रहण करना तथा उच्चारण करना | अतएव नियमित रूप से जीभ को कृष्णार्पित भोग के उच्छिष्ट का स्वाद लेने में तथा हरे कृष्ण का कीर्तन करने में प्रयुक्त करना चाहिए | जहाँ तक नेत्रों का सम्बन्ध है, उन्हें कृष्ण के सुन्दर रूप के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं देखने देना चाहिए | इससे नेत्र वश में होंगे | इसी प्रकार कानों को कृष्ण के विषय में श्रवण करने में लगाना चाहिए, और नाक को कृष्णार्पित फूलों को सूँघने में लगाना चाहिए | यह भक्ति की विधि है, और यहाँ यह समझना होगा कि भगवद्गीता केवल भक्ति के विज्ञान का प्रतिपादन करती है | भक्ति ही प्रमुख एवं एकमात्र लक्ष्य है |

तात्पर्य

भगवद्गीता के बुद्धिहीन भाष्यकार पाठक के ध्यान को अन्य विषयों की ओर मोड़ना चाहते हैं, लेकिन भगवद्गीता में भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई भी विषय नहीं है | मिथ्या अहंकार का अर्थ है, इस शरीर को आत्मा मानना | जब कोई यह जान जाता है कि वह शरीर नहीं, अपितु आत्मा है तो वह वास्तविक अहंकार को प्राप्त होता है | अहंकार तो रहता ही है | मिथ्या अहंकार की भर्त्सना की जाती है , वास्तविक अहंकार की नहीं | वैदिक साहित्य में (बृहदारण्यक उपनिषद् १.४.१०) कहा गया है - अहं ब्रह्मास्मि - मैं ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा हूँ | 'मैं हूँ' ही आत्म भाव है, और यह आत्म-साक्षात्कार की मुक्त अवस्था में भी पाया जाता है | 'मैं हूँ' का भाव ही अहंकार है लेकिन जब 'मैं हूँ' भाव को मिथ्या शरीर के लिए प्रयुक्त किया जाता है, तो वह मिथ्या अहंकार होता है | जब इस आत्म भाव (स्वरूप) को वास्तविकता के लिए प्रयुक्त किया जाता है, तो वह वास्तविक अहंकार होता है | ऐसे कुछ दार्शनिक हैं, जो यह कह सकते है कि हमें अपना अहंकार त्यागना चाहिए | लेकिन हम अपने अहंकार को त्यागे कैसे? क्योंकि अहंकार का अर्थ है स्वरूप | लेकिन हमें मिथ्या देहात्मबुद्धि का त्याग करना ही होगा | जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि को स्वीकार करने के कष्ट को समझना चाहिए | वैदिक ग्रन्थों में जन्म के अनेक वृत्तान्त हैं | श्रीमद्भागवत में जन्म से पूर्व की स्थिति, माता के गर्भ में बालक के निवास, उसके कष्ट आदि का सजीव वर्णन हुआ है | यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि जन्म बहुत कष्टपूर्ण है | चूँकि हम भूल जाते हैं कि माता के गर्भ में हमें कितना कष्ट मिला है, अतएव हम जन्म तथा मृत्यु की पुनरावृत्ति का कोई हल नहीं निकाल पाते | इसी प्रकार मृत्यु के समय भी सभी प्रकार के कष्ट

तात्पर्य

मिलते हैं, जिनका उल्लेख प्रामाणिक शास्त्रों में हुआ है | इनकी विवेचना की जानी चाहिए | जहाँ तक रोग तथा वृद्धावस्था का प्रश्न है, सबों को इनका व्यावहारिक अनुभव है | कोई भी रोगग्रस्त नहीं होना चाहता, कोई भी बूढ़ा नहीं होना चाहता, लेकिन इनसे बचा नहीं का सकता | जब तक जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के दुखों को देखते हुए इस भौतिक जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण नहीं बना पाते, तब तक आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं रह जाता | जहाँ तक संतान, पत्नी तथा घर से विरक्ति की बात है, इसका अर्थ यह नहीं कि इनके लिए कोई भावना ही न हो | ये सब स्नेह की प्राकृतिक वस्तुएँ हैं | लेकिन जब ये आध्यात्मिक उन्नति में अनुकूल न हों , तो इनके प्रति आसक्त नहीं होना चाहिए | घर को सुखमय बनाने की सर्वोत्तम विधि कृष्णभावनामृत है | यदि कोई कृष्णभावनामृत से पूर्ण रहे, तो वह अपने घर को अत्यन्त सुखमय बना सकता है, क्योंकि कृष्णभावनामृत की विधि अत्यन्त सरल है | इसमें केवल हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण , हरे हरे | हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे - का कीर्तन करना होता है , कृष्णार्पित भोग का उच्छिष्ट ग्रहण करना होता है, भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत जैसे ग्रन्थों पर विचार-विमर्श करना होता है, और अर्चाविग्रह की पूजा करनी होती है | इन चारों बातों से मनुष्य सुखी होगा | मनुष्य को चाहिए कि अपने परिवार के सदस्यों को ऐसी शिक्षा दे | परिवार के सदस्य प्रतिदिन प्रातः तथा सांयकाल बैठ कर साथ-साथ हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करें | यदि कोई इन चारों सिद्धान्तों का पालन करते हुए अपने पारिवारिक जीवन को कृष्णभावनामृत विकसित करने में ढाल सके, तो पारिवारिक जीवन को त्याग कर विरक्त जीवन

तात्पर्य

बिताने की आवश्यकता नहीं होगी | लेकिन यदि यह आध्यात्मिक प्रगति के लिए अनुकूल न रहे, तो पारिवारिक जीवन का परित्याग कर देना चाहिए | मनुष्य को चाहिए कि कृष्ण के साक्षात्कार करने या उनकी सेवा करने के लिए सर्वस्व न्योछावर कर दे, जिस प्रकार से अर्जुन ने किया था | अर्जुन अपने परिजनों को मारना नहीं चाह रहा था, किन्तु जब वह समझ गया कि ये परिजन कृष्णसाक्षात्कार में बाधक हो रहें हैं, तो उसने कृष्ण के आदेश को स्वीकार किया | वह उनसे लड़ा और उसने उनको मार डाला | इन सब विषयों में मनुष्य को पारिवारिक जीवन के सुख-दुख से विरक्त रहना चाहिए, क्योंकि इस संसार में कोई भी न तो पूर्ण सुखी रह सकता है, न दुखी | सुख-दुख भौतिक जीवन को दूषित करने वाले हैं | मनुष्य को चाहिए कि इन्हें सहना सीखे, जैसा कि भगवद्गीता में उपदेश दिया गया है | कोई कभी भी सुख-दुख के आने-जाने पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता, अतः मनुष्य को चाहिए कि भौतिकवादी जीवन-शैली से अपने को विलग कर ले और दोनों ही दशाओं में समभाव बनाये रहे | सामन्यतया जब हमें इच्छित वस्तु मिल जाती है, तो हम अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और जब अनिच्छित घटना घटती है, तो हम दुखी होते हैं | लेकिन यदि हम वास्तविक आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त हों, तो ये बातें हमें विचलित नहीं कर पाएँगी | इस स्थिति तक पहुँचने के लिए हमें अटूट भक्ति का अभ्यास करना होता है | विपथ हुए बिना कृष्णभक्ति का अर्थ होता है भक्ति की नव विधियों - कीर्तन, श्रवण, पूजन आदि में प्रवृत्त होना, जैसा नवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में वर्णन हुआ है | इस विधि का अनुसरण करना चाहिए |

तात्पर्य

यह स्वाभाविक है कि आध्यात्मिक जीवन-शैली का अभ्यस्त हो जाने पर मनुष्य भौतिकवादी लोगों से मिलना नहीं चाहेगा | इससे उसे हानि पहुँच सकती है | मनुष्य को चाहिए कि वह यह परीक्षा करके देख ले कि वह अवांछित संगति के बिना एकान्तवास करने में कहाँ तक सक्षम है | यह स्वाभाविक ही है कि भक्त में व्यर्थ के खेलकूद या सिनेमा जाने या किसी सामाजिक उत्सव में सम्मिलित होने की कोई रूचि नहीं होती, क्योंकि वह यह जानता है कि यह समय को व्यर्थ गवाँना है | कुछ शोध-छात्र तथा दार्शनिक ऐसे हैं जो कामवासनापूर्ण जीवन या अन्य विषय का अध्ययन करते हैं, लेकिन भगवद्गीता के अनुसार ऐसा शोध कार्य और दार्शनिक चिन्तन निरर्थक है | यह एक प्रकार से व्यर्थ होता है | भगवद्गीता के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि अपने दार्शनिक विवेक से वह आत्मा की प्रकृति के विषय में शोध करे | उसे चाहिए कि वह अपने आत्मा को समझने के लिए शोध करे | यहाँ पर इसी की संस्तुति की गई है |

जहाँ तक आत्म-साक्षात्कार का सम्बन्ध है, यहाँ पर स्पष्ट उल्लेख है कि भक्तियोग ही व्यावहारिक है | ज्योंही भक्ति की बात उठे, तो मनुष्य को चाहिए कि परमात्मा तथा आत्मा के सम्बन्ध पर विचार करे | आत्मा तथा परमात्मा कभी एक नहीं हो सकते, विशेषतया भक्तियोग में तो कभी नहीं | परमात्मा के प्रति आत्मा की यह सेवा नित्य है, जैसा कि स्पष्ट किया गया है | अतएव भक्ति शाश्वत (नित्य) है | मनुष्य को इसी दार्शनिक धारणा में स्थित होना चाहिए |

तात्पर्य

श्रीमद्भागवत में (१.२.११) व्याख्या की गई है - वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् - जो परम सत्य के वास्तविक ज्ञाता हैं, वे जानते हैं कि आत्मा का साक्षात्कार तीन रूपों में किया जाता है - ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् | परम सत्य के साक्षात्कार में भगवान् पराकाष्ठा होते हैं, अतएव मनुष्य को चाहिए कि भगवान् को समझने के पद तक पहुँचे और भगवान् की भक्ति में लग जाय | यही ज्ञान की पूर्णता है |

विनम्रता से लेकर भगवत्साक्षात्कार तक की विधि भूमि से चल कर उपरी मंजिल तक पहुँचने के लिए सीढ़ी के समान है | इस सीढ़ी में कुछ ऐसे लोग हैं, जो अभी पहली सीढ़ी पर हैं, कुछ दूसरी पर, तो कुछ तीसरी पर | किन्तु जन तक मनुष्य उपरी मंजिल पर नहीं पहुँच जाता, जो कि कृष्ण का ज्ञान है, तक तक वह ज्ञान की निम्नतर अवस्था में ही रहता है | यदि कोई ईश्वर की बराबरी करते हुए आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति करना चाहता है, तो उसका प्रयास विफल होगा | यह स्पष्ट कहा गया है कि विनम्रता के बिना ज्ञान सम्भव नहीं है | अपने को ईश्वर समझना सर्वाधिक गर्व है | यद्यपि जीव सदैव प्रकृति के कठोर नियमों द्वारा ठुकराया जाता है, फिर भी वह अज्ञान के कारण सोचता है कि 'मैं ईश्वर हूँ|' ज्ञान का शुभारम्भ 'अमानित्व' या विनम्रता से होता है | मनुष्य को विनम्र होना चाहिए | परमेश्वर के प्रति विद्रोह के कारण ही मनुष्य प्रकृति के अधीन हो जाता है | मनुष्य को इस सच्चाई को जानना और इससे विश्वस्त होना चाहिए |

13.

bhaktiprasad.in

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते |
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते || 13.13 ||

अब मैं तुम्हें ज्ञेय के विषय में बतलाऊँगा, जिसे जानकर तुम नित्य ब्रह्म का आस्वादन कर सकोगे | यह ब्रह्म या आत्मा, जो अनादि है और मेरे अधीन है, इस भौतिक जगत् के कार्य-करण से परे स्थित है |

I shall now explain the knowable, knowing which you will taste the eternal. This is beginningless, and it is subordinate to Me. It is called Brahman, the spirit, and it lies beyond the cause and effect of this material world.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् ने क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ की व्याख्या की | उन्होंने क्षेत्रज्ञ को जानने की विधि की भी व्याख्या की | अब वे ज्ञेय के विषय में बता रहे हैं - पहले आत्मा के विषय में, फिर परमात्मा के विषय में | ज्ञाता अर्थात् आत्मा तथा परमात्मा दोनों ही ज्ञान से मनुष्य जीवन-अमृत का आस्वादन कर सकता है | जैसा कि द्वितीय अध्याय में कहा गया है, जीव नित्य है | इसकी भी यहाँ पुष्टि हुई है | जीव के उत्पन्न होने की कोई निश्चित तिथि नहीं है | न ही कोई परमेश्वर से जीवात्मा के प्राकट्य का इतिहास बता सकता है | अतएव वह अनादि है | इसकी पुष्टि वैदिक साहित्य से होती है - न जायते म्रियते वा विपश्चित् (कठोपनिषद् १.२.१८) | शरीर का ज्ञाता न तो कभी उत्पन्न होता है, और न मरता है | वह ज्ञान से पूर्ण होता है |

वैदिक साहित्य में (श्वेताश्वतर उपनिषद ६.१६) भी परमेश्वर को परमात्मा रूप में - प्रधान क्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः- शरीर का मुख्य ज्ञाता तथा प्रकृति के गुणों का स्वामी कहा गया है | स्मृति वचन है - दासभूतो हरेरेव नान्यस्यैव कदाचन | जीवात्माएँ सदा भगवान् की सेवा में लगी रहती हैं | इसकी पुष्टि भगवान् चैतन्य के अपने उपदेशों में भी है | अतएव इस श्लोक में ब्रह्म का जो वर्णन है, वह आत्मा का है और जब ब्रह्म शब्द जीवात्मा के लिए व्यवहृत होता है, तो यह समझना चाहिए कि वह आनन्दब्रह्म न होकर विज्ञानब्रह्म है | आनन्द ब्रह्म ही परब्रह्म भगवान् है |

14.

bhaktiprasad.in

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् |
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति || 13.14 ||

उनके हाथ, पाँव, आखें, सिर तथा मुँह तथा उनके कान सर्वत्र हैं | इस प्रकार परमात्मा सभी वस्तुओं में व्याप्त होकर अवस्थित है |

Everywhere are His hands and legs, His eyes and faces, and He hears everything. In this way the Supersoul exists.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जिस प्रकार सूर्य अपनी अनन्त रश्मियों को विकर्ण करके स्थित है, उसी प्रकार परमात्मा या भगवान् भी हैं | वे अपने सर्वव्यापी रूप में स्थित रहते हैं, और उनमें आदि शिक्षक ब्रह्मा से लेकर छोटी सी चींटी तक के सारे जीव स्थित हैं | उनके अनन्त शिर, हाथ , पाँव तथा नेत्र हैं, और अनन्त जीव हैं | ये सभी परमात्मा में ही स्थित हैं | अतएव परमात्मा सर्वव्यापक है | लेकिन आत्मा यह नहीं कह सकता कि उसके हाथ, पाँव तथा नेत्र चारों दिशाओं में हैं | यह सम्भव नहीं है | यदि वह अज्ञान के कारण यह सोचता है कि उसे इसका ज्ञान नहीं है कि उसके हाथ तथा पैर चतुर्दिक प्रसरित हैं, किन्तु समुचित ज्ञान होने पर ऐसी स्थिति में आ जायेगा तो उसका सोचना उल्टा है | इसका अर्थ यही होता है कि प्रकृति द्वारा बद्ध होने के कारण आत्मा परम नहीं है | परमात्मा आत्मा से भिन्न है | परमात्मा अपना हाथ असीम दूरी तक फैला सकता है, किन्तु आत्मा ऐसा नहीं कर सकता | भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि यदि कोई उन्हें पत्र, पुष्प या जल अर्पित करता है, तो वे उसे स्वीकार करते हैं | यदि भगवान् दूर होते तो फिर इन वस्तुओं को वे कैसे स्वीकार कर पाते? यही भगवान् की सर्वशक्तिमता है | यद्यपि वे पृथ्वी से बहुत दूर अपने धाम में स्थित हैं, तो भी वे किसी के द्वारा अर्पित कोई भी वस्तु अपना हाथ फैला कर ग्रहण कर सकते हैं | यही उनकी शक्तिमता है | ब्रह्मसंहिता में (५.३७) कहा गया है - गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतः - यद्यपि वे अपने दिव्य लोक में लीला-रत रहते हैं, फिर भी वे सर्वव्यापी हैं | आत्मा ऐसा घोषित नहीं कर सकता कि वह सर्वव्याप्त है | अतएव इस श्लोक में आत्मा (जीव) नहीं, अपितु परमात्मा या भगवान् का वर्णन हुआ है |

15.

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् |
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च|| 13.15 ||

bhaktiprasad.in

परमात्मा समस्त इन्द्रियों के मूल स्त्रोत हैं, फिर भी वे इन्द्रियों से रहित हैं | वे समस्त जीवों के पालनकर्ता होकर भी अनासक्त हैं | वे प्रकृति के गुणों के परे हैं, फिर भी वे भौतिक प्रकृति के समस्त गुणों के स्वामी हैं |

The Supersoul is the original source of all senses, yet He is without senses. He is unattached, although He is the maintainer of all living beings. He transcends the modes of nature, and at the same time He is the master of all modes of material nature.

Designed by DigitalWebdia .com

तात्पर्य

यद्यपि परमेश्वर समस्त जीवों की समस्त इन्द्रियों के स्रोत हैं, फिर भी जीवों की तरह उनके भौतिक इन्द्रियाँ नहीं होती | वास्तव में जीवों में आध्यात्मिक इन्द्रियाँ होती हैं, लेकिन बद्ध जीवन में वे भौतिक तत्त्वों से आच्छादित रहती हैं, अतएव इन्द्रियकार्यों का प्राकट्य पदार्थ द्वारा होता है | परमेश्वर की इन्द्रियाँ इस तरह आच्छादित नहीं रहती | उनकी इन्द्रियाँ दिव्य होती हैं, अतएव निर्गुण कहलाती हैं | गुण का अर्थ है भौतिक गुण, लेकिन उनकी इन्द्रियाँ भौतिक आवरण से रहित होती हैं | यह समझ लेना चाहिए कि उनकी इन्द्रियाँ हमारी इन्द्रियों जैसी नहीं होती | यद्यपि वे हमारे समस्त ऐन्द्रिय कार्यों के स्रोत हैं, लेकिन उनकी इन्द्रियाँ दिव्य होती हैं, जो कल्मषरहित होती हैं | इसकी बड़ी ही सुन्दर व्याख्या श्वेताश्वतर उपनिषद् में (३.१९) अपाणिपादो जवनोग्रहीता श्लोक में हुई है | भगवान् के हाथ भौतिक कल्मषों से ग्रस्त नहीं होते, अतएव उन्हें जो कुछ अर्पित किया जाता है, उसे वे अपने हाथों से ग्रहण करते हैं | बद्धजीव तथा परमात्मा में यही अन्तर है | उनके भौतिक नेत्र नहीं होते, फिर भी उनके नेत्र होते हैं, अन्यथा वे कैसे देख सकते ? वे सब कुछ देखते हैं - भूत, वर्तमान तथा भविष्य | वे जीवों के हृदय में वास करते हैं, और वे जानते हैं कि भूतकाल में हमने क्या किया, अब क्या कर रहे हैं और भविष्य में क्या होने वाला है | इसकी पुष्टि भगवद्गीता में हुई है | वे सब कुछ जानते हैं, किन्तु उन्हें कोई नहीं जानता | कहा जाता है कि परमेश्वर के हमारे जैसे पाँव नहीं हैं, लेकिन वे आकाश में विचरण कर सकते हैं, क्योंकि उनके आध्यात्मिक पाँव होते हैं | दूसरे शब्दों में, भगवान् निराकार नहीं हैं, उनके अपने नेत्र, पाँव,

तात्पर्य

तथा अन्य इन्द्रियाँ प्रकृति द्वारा कल्मषग्रस्त नहीं होतीं |

भगवद्गीता से भी पुष्टि होती है कि जब भगवान् प्रकट होते हैं, तो वे अपनी अन्तरंगा शक्ति से यथारूप में प्रकट होते हैं | वे भौतिक शक्ति द्वारा कल्मषग्रस्त नहीं होते, क्योंकि वे भौतिक शक्ति के स्वामी हैं | वैदिक साहित्य से हमें पता चलता है कि उनका सारा शरीर आध्यात्मिक है | उनका अपना नित्यस्वरूप होता है, जो सच्चिदानन्द विग्रह है | वे समस्त ऐश्वर्य से पूर्ण है | वे सारी सम्पत्ति के स्वामी हैं और सारी शक्ति के स्वामी हैं | वे सर्वाधिक बुद्धिमान तथा ज्ञान से पूर्ण हैं | ये भगवान् के कुछ लक्षण हैं | वे समस्त जीवों के पालक हैं और सारी गतिविधि के साक्षी हैं | जहाँ तक वैदिक साहित्य से समझा जा सकता है, परमेश्वर सदैव दिव्य हैं | यद्यपि हमें उनके हाथ, पाँव, सर, मुख नहीं दीखते, लेकिन वे होते हैं और जब हम दिव्य पद तक ऊपर उठ जाते हैं, तो हमें भगवान् के स्वरूप के दर्शन होते हैं | कल्मषग्रस्त इन्द्रियों के कारण हम उनके स्वरूप को देख नहीं पाते | अतएव निर्विशेषवादी भगवान् को नहीं समझ सकते, क्योंकि वे भौतिक दृष्टि से प्रभावित होते है |

16.

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च |
सुक्ष्मत्वत्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत || 13.16 ||

bhaktiprasad.in

परमसत्य जड़ तथा जंगम समस्त जीवों के बाहर तथा भीतर स्थित हैं | सूक्ष्म होने के कारण वे भौतिक इन्द्रियों के द्वारा जानने या देखने से परे हैं | यद्यपि वे अत्यन्त दूर रहते हैं, किन्तु हम सबों के निकट भी हैं |

The Supreme Truth exists both internally and externally, in the moving and nonmoving. He is beyond the power of the material senses to see or to know. Although far, far away, He is also near to all.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

वैदिक साहित्य से हम जानते हैं कि परम-पुरुष नारायण प्रत्येक जीव के बाहर तथा भीतर निवास करने वाले हैं | वे भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही जगतों में विद्यमान रहते हैं | यद्यपि वे बहुत दूर हैं, फिर भी वे हमारे निकट रहते हैं | ये वैदिक साहित्य के वचन हैं | आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः (कठोपनिषद् १.२.२१) | चूँकि वे निरन्तर दिव्य आनन्द भोगते रहते हैं , अतएव हम यह नहीं समझ पाते कि वे सारे ऐश्वर्य का भोग किस तरह कर सकते हैं | हम इन भौतिक इन्द्रियों से न तो उन्हें देख पाते हैं, न समझ पाते हैं | अतएव वैदिक भाषा में कहा गया है कि उन्हें समझने में हमारा भौतिक मन तथा इन्द्रियाँ असमर्थ हैं | किन्तु जिसने, भक्ति में कृष्णभावनामृत का अभ्यास करते हुए, अपने मन तथा इन्द्रियों को शुद्ध कर लिया है, वह उन्हें निरन्तर देख सकता है | ब्रह्मसंहिता में इसकी पुष्टि हुई है कि परमेश्वर के लिए जिस भक्त में प्रेम उपज चुका है, वह निरन्तर उनका दर्शन कर सकता है | और भगवद्गीता में (११.५४) इसकी पुष्टि हुई है कि उन्हें केवल भक्ति द्वारा देखा तथा समझा जा सकता है | भक्त्या त्वनन्यया शक्यः|

17.

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् |
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च || 13.17 ||

bhaktiprasad.in

यद्यपि परमात्मा समस्त जीवों के मध्य विभाजित प्रतीत होता है, लेकिन वह कभी भी विभाजित नहीं है | वह एक रूप में स्थित है | यद्यपि वह प्रत्येक जीव का पालनकर्ता है, लेकिन यह समझना चाहिए कि वह सबों का संहारकरता है और सबों को जन्म देता है |

Although the Supersoul appears to be divided, He is never divided. He is situated as one. Although He is the maintainer of every living entity, it is to be understood that He devours and develops all.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् सबों के हृदय में परमात्मा रूप में स्थित हैं | तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि वे बँटे हुए हैं? नहीं | वास्तव में वे एक हैं | यहाँ पर सूर्य का उदाहरण दिया जाता है | सूर्य मध्याह्न समय अपने स्थान पर रहता है, लेकिन यदि कोई चारों ओर पाँच हजार मील की दूरी पर घुमे और पूछे कि सूर्य कहाँ है, तो सभी लोग यही कहेंगे कि वह उसके सर पर चमक रहा है | वैदिक साहित्य में यह उदाहरण यह दिखाने के लिए दिया गया है कि यद्यपि भगवान् अविभाजित हैं, लेकिन इस प्रकार स्थित हैं मानो विभाजित हों | यही नहीं, वैदिक साहित्य में यह भी कहा गया है कि अपनी सर्वशक्तिमता के द्वारा एक विष्णु सर्वत्र विद्यमान हैं, जिस तरह अनेक पुरुषों को एक ही सूर्य की प्रतीति अनेक स्थानों में होती है | यद्यपि परमेश्वर प्रत्येक जीव के पालनकर्ता हैं, किन्तु प्रलय के समय सबों का भक्षण कर जाते हैं | इसकी पुष्टि ग्याहरवें अध्याय में हो चुकी है, जहाँ भगवान् कहते हैं कि वे कुरुक्षेत्र में एकत्र सारे योद्धाओं का भक्षण करने के लिए आये है | उन्होंने यह भी कहा कि वे काल के रूप में सब का भक्षण करते हैं | वे सबके प्रलयकारी और संहारकर्ता हैं | जब सृष्टि की जाती है, तो वे सबों को मूल स्थिति से विकसित करते हैं और प्रलय के समय उन सबको निगल जाते हैं | वैदिक स्तोत्र पुष्टि करते हैं कि वे समस्त जीवों के मूल तथा सबके आश्रय-स्थल हैं | सृष्टि के बाद सारी वस्तुएँ उनकी सर्वशक्तिमता पर टिकी रहती हैं और प्रलय के बाद सारी वस्तुएँ पुनः उन्हीं में विश्राम पाने के लिए लौट आती हैं | ये सब वैदिक स्तोत्रों की पुष्टि करने वाले हैं | यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म तद्विजिज्ञासस्व (तैत्तिरीय उपनिषद् ३.१) |

18.

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते |
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् || 13.18 ||

bhaktiprasad.in

वे समस्त प्रकाशमान वस्तुओं के प्रकाशस्त्रोत हैं | वे भौतिक अंधकार से परे हैं और अगोचर हैं | वे ज्ञान हैं, ज्ञेय हैं और ज्ञान के लक्ष्य हैं | वे सबके हृदय में स्थित हैं |

He is the source of light in all luminous objects. He is beyond the darkness of matter and is un-manifested. He is knowledge, He is the object of knowledge, and He is the goal of knowledge. He is situated in everyone's heart.

Designed by DigitalWebdia .com

तात्पर्य

परमात्मा या भगवान् ही सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रों जैसी प्रकाशमान वस्तुओं के प्रकाशस्त्रोत हैं | वैदिक साहित्य से हमें पता चलता है कि वैकुण्ठ राज्य में सूर्य या चन्द्रमा की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि वहाँ पर परमेश्वर का तेज जो है | भौतिक जगत् में वह ब्रह्मज्योति या भगवान् का आध्यात्मिक तेज महत्तत्व अर्थात् भौतिक तत्त्वों से ढका रहता है | अतएव इस जगत् में हमें सूर्य, चन्द्र, बिजली आदि के प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है, लेकिन आध्यात्मिक जगत् में ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती | वैदिक साहित्य में स्पष्ट है कि वे इस भौतिक जगत् में स्थित नहीं हैं, वे तो आध्यात्मिक जगत् (वैकुण्ठ लोक) में स्थित हैं, जो चिन्मय आकाश में बहुत ही दूरी पर है | इसकी भी पुष्टि वैदिक साहित्य से होती है | आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३.८) | वे सूर्य की भाँति अत्यन्त तेजोमय हैं, लेकिन इस भौतिक जगत के अन्धकार से बहुत दूर हैं | उनका ज्ञान दिव्य है | वैदिक साहित्य पुष्टि करता है कि ब्रह्म घनीभूत दिव्य ज्ञान है | जो वैकुण्ठलोक जाने का इच्छुक है, उसे परमेश्वर द्वारा ज्ञान प्रदान किया जाता है, जो प्रत्येक हृदय में स्थित हैं | एक वैदिक मन्त्र है (श्वेताश्वतर-उपनिषद् ६.१८) - तं ह देवम् आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये| मुक्ति के इच्छुक मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् की शरण में जाय | जहाँ तक चरम ज्ञान के लक्ष्य का सम्बन्ध है, वैदिक साहित्य से भी पुष्टि होती है - तमेव विदित्वाति मृत्युमेति - उन्हें जान लेने के बाद ही जन्म तथा मृत्यु की परिधि को लाँघा जा सकता है (श्वेताश्वतर उपनिषद् ३.८) |

तात्पर्य

वे प्रत्येक हृदय में परम नियन्ता के रूप में स्थित हैं | परमेश्वर के हाथ-पैर सर्वत्र फैले हैं, लेकिन जीवात्मा के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता | अतएव यह मानना ही पड़ेगा कि कार्य क्षेत्र को जानने वाले दो ज्ञाता हैं-एक जीवात्मा तथा दूसरा परमात्मा | पहले के हाथ-पैर केवल किसी एक स्थान तक सीमित (एकदेशीय) हैं, जबकि कृष्ण के हाथ-पैर सर्वत्र फैले हैं | इसकी पुष्टि श्वेताश्वतर उपनिषद् में (३.१७) इस प्रकार हुई है - सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् | वह परमेश्वर या परमात्मा समस्त जीवों का स्वामी या प्रभु है, अतएव वह उन सबका चरम लक्ष्य है | अतएव इस बात से मना नहीं किया जा सकता कि परमात्मा तथा जीवात्मा सदैव भिन्न होते हैं |

19.

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः |
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते || 13.19 ||

bhaktiprasad.in

इस प्रकार मैंने कर्म क्षेत्र (शरीर), ज्ञान तथा ज्ञेय का संक्षेप में वर्णन किया है | इसे केवल मेरे भक्त ही पूरी तरह समझ सकते हैं और इस तरह मेरे स्वभाव को प्राप्त होते हैं |

Thus the field of activities [the body], knowledge, and the knowable have been summarily described by Me. Only My devotees can understand this thoroughly and thus attain to My nature.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् ने शरीर, ज्ञान तथा ज्ञेय का संक्षेप में वर्णन किया है | यह ज्ञान तीन वस्तुओं का है - ज्ञाता, ज्ञेय तथा जानने की विधि | ये तीनों मिलकर विज्ञान कहलाते हैं | पूर्ण ज्ञान भगवान् के अनन्य भक्तों द्वारा प्रत्यक्षतः समझा जा सकता है | अन्य इसे समझ पाने में असमर्थ रहते हैं | अद्वैतवादियों का कहना है कि अन्तिम अवस्था में ये तीनों बातें एक हो जाती हैं, लेकिन भक्त ऐसा नहीं मानते | ज्ञान तथा ज्ञान के विकास का अर्थ है अपने को कृष्णभावनामृत में समझना | हम भौतिक चेतना द्वारा संचालित होते हैं, लेकिन ज्योंही हम अपनी सारी चेतना कृष्ण के कार्यों में स्थानान्तरित कर देते हैं, और इसका अनुभव करते हैं कि कृष्ण ही सब कुछ हैं, तो हम वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं | दूसरे शब्दों में, ज्ञान तो भक्ति को पूर्णतया समझने के लिए प्रारम्भिक अवस्था है | पन्द्रहवें अध्याय में इसकी विशद व्याख्या की गई है | अब हम सारांश में कह सकते हैं कि श्लोक ६ तथा ७ के महाभूतानि से लेकर चेतना धृतिः तक भौतिक तत्त्वों तथा जीवन के लक्षणों की कुछ अभिव्यक्तियों का विश्लेषण हुआ है | ये सब मिलकर शरीर तथा कार्यक्षेत्र का निर्माण करते हैं, तथा श्लोक ८ से लेकर १२ तक अमानित्वम् से लेकर तत्त्वज्ञानार्थ-दर्शनम् तक कार्यक्षेत्र के दोनों प्रकार के ज्ञाताओं, अर्थात् आत्मा तथा परमात्मा के ज्ञान की विधि का वर्णन हुआ है | श्लोक १३ से १८ में अनादि मत्परम् से लेकर हृदि सर्वस्य विष्ठितम् तक जीवात्मा तथा परमात्मा का वर्णन हुआ है |

तात्पर्य

इस प्रकार तीन बातों का वर्णन हुआ है - कार्यक्षेत्र (शरीर) , जानने की विधि तथा आत्मा एवं परमात्मा | यहाँ इसका विशेष उल्लेख हुआ है कि भगवान् के अनन्य भक्त ही इन तीनों बातों को ठीक से समझ सकते हैं | अतएव ऐसे भक्तों के लिए भगवद्गीता अत्यन्त लाभप्रद है, वे ही परम लक्ष्य, अर्थात् परमेश्वर कृष्ण के स्वभाव को प्राप्त कर सकते हैं | दूसरे शब्दों में, केवल भक्त ही भगवद्गीता को समझ सकते हैं और वांछित फल प्राप्त कर सकते हैं - अन्य लोग नहीं |

20.

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि |
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् || 13.20 ||

bhaktiprasad.in

प्रकृति तथा जीवों को अनादि समझना चाहिए | उनके विकार तथा गुण प्रकृतिजन्य हैं |

Material nature and the living entities should be understood to be beginningless. Their transformations and the modes of matter are products of material nature.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

इस अध्याय के ज्ञान से मनुष्य शरीर (क्षेत्र) तथा शरीर के ज्ञाता (जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों) को जान सकता है | शरीर क्रियाक्षेत्र है और प्रकृति से निर्मित है | शरीर के भीतर बद्ध तथा उसके कार्यों का भोग करने वाला आत्मा ही पुरुष या जीव है | वह ज्ञाता है और इसके अतिरिक्त भी दूसरा ज्ञाता होता है, जो परमात्मा है | निस्सन्देह यह समझना चाहिए कि परमात्मा तथा आत्मा एक ही भगवान् की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं | जीवात्मा उनकी शक्ति है और परमात्मा उनका साक्षात् अंश (स्वांश) है | प्रकृति तथा जीव दोनों ही नित्य हैं | तात्पर्य यह है कि वे सृष्टि के पहले से विद्यमान हैं | यह भौतिक अभिव्यक्ति परमेश्वर की शक्ति से है, और उसी प्रकार जीव भी हैं, किन्तु जीव श्रेष्ठ शक्ति है | जीव तथा प्रकृति इस ब्रह्माण्ड के उत्पन्न होने से पूर्व से विद्यमान हैं | प्रकृति तो महाविष्णु में लीन हो गई और जब इसकी आवश्यकता पड़ी तो यह महत्-तत्त्व के द्वारा प्रकट हुई | इसी प्रकार जीव भी उनके भीतर रहते हैं, और चूँकि वे बद्ध हैं, अतएव वे परमेश्वर की सेवा करने से विमुख हैं | इस तरह उन्हें वैकुण्ठ-लोक में प्रविष्ट होने नहीं दिया जाता | लेकिन प्रकृति के व्यक्त होने पर इन्हें भौतिक जगत् में पुनः कर्म करने और वैकुण्ठ-लोक में प्रवेश करने की तैयारी करने का अवसर दिया जाता है | इस भौतिक सृष्टि का यही रहस्य है | वास्तव में जीवात्मा मूलतः परमेश्वर का अंश है, लेकिन अपने विद्रोही स्वभाव के कारण वह प्रकृति के भीतर बद्ध रहता है | इसका कोई महत्त्व नहीं है कि ये जीव या श्रेष्ठ जीव किस प्रकार प्रकृति के सम्पर्क में आये | किन्तु भगवान् जानते हैं कि ऐसा कैसे और क्यों हुआ | शास्त्रों में भगवान् का वचन है कि जो लोग प्रकृति द्वारा आकृष्ट हैं, वे कठिन जीवन-संघर्ष कर रहे हैं | लेकिन इस कुछ श्लोकों के वर्णनों से यह निश्चित समझ लेना होगा कि प्रकृति के तीन गुणों के द्वारा उत्पन्न विकार प्रकृति की ही उपज हैं | जीवों के सारे विकार तथा प्रकार शरीर के कारण हैं | जहाँ तक आत्मा का सम्बन्ध है, सारे जीव एक ही हैं |

21.

bhaktiprasad.in

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते |
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते || 13.21 ||

प्रकृति समस्त भौतिक कारणों तथा कार्यों (परिणामों) की हेतु कही जाती है, और जीव (पुरुष) इस संसार में विविध सुख-दुख के भोग का कारण कहा जाता है |

Nature is said to be the cause of all material activities and effects, whereas the living entity is the cause of the various sufferings and enjoyments in this world.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जीवों में शरीर तथा इन्द्रियों की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ प्रकृति के कारण हैं | कुल मिलाकर ८४ लाख भिन्न-भिन्न योनियाँ हैं और ये सब प्रकृतिजन्य हैं | जीव के विभिन्न इन्द्रिय-सुखों से ये योनियाँ मिलती हैं जो इस प्रकार इस शरीर या उस शरीर में रहने की इच्छा करता है | जब उसे विभिन्न शरीर प्राप्त होते हैं, तो वह विभिन्न प्रकार के सुख तथा दुख भोगता है | उसके भौतिक दुख-सुख उसके शरीर के कारण होते हैं, स्वयं उसके कारण नहीं | उसकी मूल अवस्था में भोग में कोई सन्देह नहीं रहता, अतएव वही उसकी वास्तविक स्थिति है | वह प्रकृति पर प्रभुत्व जताने के लिए भौतिक जगत् में आता है | वैकुण्ठ-लोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं होती | वैकुण्ठ-लोक शुद्ध है, किन्तु भौतिक जगत् में प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न प्रकार के शरीर-सुखों को प्राप्त करने के लिए कठिन संघर्ष में रत रहता है | यह कहने से बात और स्पष्ट हो जाएगी कि यह शरीर इन्द्रियों का कार्य है | इन्द्रियाँ इच्छाओं की पूर्ति का साधन हैं | यह शरीर तथा हेतु रूप इन्द्रियाँ प्रकृति द्वारा प्रदत्त हैं, और जैसा कि अगले श्लोक से स्पष्ट हो जाएगा, जीव को अपनी पूर्व आकांक्षा तथा कर्म के अनुसार परिस्थितियों के वश वरदान या शाप मिलता है | जीव की इच्छाओं तथा कर्मों के अनुसार प्रकृति उसे विभिन्न स्थानों में पहुँचाती है | जीव स्वयं ऐसे स्थानों में जाने तथा मिलने वाले सुख-दुख का कारण होता है | एक प्रकार का शरीर प्राप्त हो जाने पर वह प्रकृति के वश में हो जाता है, क्योंकि शरीर, पदार्थ होने के कारण, प्रकृति के नियमानुसार कार्य करता है | उस समय शरीर में ऐसी शक्ति नहीं कि वह उस नियम को बदल सके | मान लीजिये कि जीव को कुत्ते का शरीर प्राप्त हो गया | ज्योंही वह कुत्ते के शरीर में स्थापित किया जाता है,उसे कुत्ते की भाँति आचरण करना होता है | वह अन्यथा आचरण नहीं कर एकता | यदि जीव को सूकर का शरीर प्राप्त होता है, तो वह मल खाने तथा सूकर की भाँति रहने के लिए बाध्य है |

तात्पर्य

इसी प्रकार यदि जीव को देवता का शरीर प्राप्त हो जाता है, तो उसे अपने शरीर के अनुसार कार्य करना होता है | यही प्रकृति का नियम है | वेदों में (मुण्डक उपनिषद् ३.१.१) इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है - द्वा सुर्पणा सयुजा सखायः| परमेश्वर जीव पर इतना कृपालु है कि वह सदा जीव के साथ रहता है और सभी परिस्थितियों में परमात्मा रूप में विद्यमान रहता है |

22.

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् |
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु || 13.22 ||

bhaktiprasad.in

इस प्रकार जीव प्रकृति के तीनों गुणों का भोग करता हुआ प्रकृति में ही जीवन बिताता है | यह उस प्रकृति के साथ उसकी संगति के कारण है | इस तरह उसे उत्तम तथा अधम योनियाँ मिलती रहती हैं |

The living entity in material nature thus follows the ways of life, enjoying the three modes of nature. This is due to his association with that material nature. Thus he meets with good and evil amongst various species.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यह श्लोक यह समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है कि जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में किस प्रकार देहान्तरण करता है | दूसरे अध्याय में बताया गया है कि जीव एक शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर उसी तरह धारण करता है, जिस प्रकार कोई वस्त्र बदलता है | वस्त्र का परिवर्तन इस संसार के प्रति आसक्ति के कारण है | जब तक जीव इस मिथ्या प्राकट्य पर मुग्ध रहता है, तब तक उसे निरन्तर देहान्तरण करना पड़ता है | प्रकृति पर प्रभुत्व जताने की इच्छा के फलस्वरूप वह ऐसी प्रतिकूल परिस्थितयों में फँसता रहता है | भौतिक इच्छा के वशीभूत हो, उसे कभी देवता के रूप में, तो कभी मनुष्य के रूप में, कभी पशु, कभी पक्षी, कभी कीड़े, कभी जल-जन्तु, कभी सन्त पुरुष, तो कभी खटमल के रूप में जन्म लेना होता है | यह क्रम चलता रहता है और प्रत्येक परिस्थिति में जीव अपने को परिस्थितियों का स्वामी मानता रहता है, जबकि वह प्रकृति के वश में होता है | यहाँ पर बताया गया है कि जीव किस प्रकार विभिन्न शरीरों को प्राप्त करता है | यह प्रकृति के विभिन्न गुणों की संगति के कारण है | अतएव इन गुणों से ऊपर उठकर दिव्य पद पर स्थित होना होता है | यही कृष्णभावनामृत कहलाता है | कृष्णभावनामृत में स्थित हुए बिना भौतिक चेतना मनुष्य को एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण करने के लिए बाध्य करती रहती है, क्योंकि अनादि काल से उसमें भौतिक आकांक्षाएँ व्याप्त हैं | लेकिन उसे इस विचार को बदलना होगा | यह परिवर्तन प्रमाणिक स्त्रोतों से सुनकर ही लाया जा सकता है | इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अर्जुन है, जो कृष्ण से ईश्वर-विज्ञान का श्रवण करता है |

तात्पर्य

यदि जीव इस श्रवण-विधि को अपना ले, तो प्रकृति पर प्रभुत्व जताने की चिर-अभिलषित आकांक्षा समाप्त हो जाए, और क्रमशः ज्यों-ज्यों वह प्रभुत्व जताने की इच्छा को कम करता जाएगा, त्यों-त्यों उसे आध्यात्मिक सुख मिलता जाएगा | एक वैदिक मंत्र में कहा गया है कि ज्यों-ज्यों जीव भगवान् की संगति से विद्वान बनता जाता है, त्यों-त्यों उसी अनुपात में वह आनन्दमाय जीवन का आस्वादन करता है |

23.

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः |
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः || 13.23 ||

bhaktiprasad.in

तो भी इस शरीर में एक दिव्य भोक्ता है, जो ईश्वर है, परम स्वामी है और साक्षी तथा अनुमति देने वाले के रूप में विद्यमान है और जो परमात्मा कहलाता है ।

Yet in this body there is another, a transcendental enjoyer who is the Lord, the supreme proprietor, who exists as the overseer and permitter, and who is known as the Supersoul.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यहाँ पर कहा गया है कि जीवात्मा के साथ निरन्तर रहने वाला परमात्मा परमेश्वर का प्रतिनिधि है । वह सामान्य जीव नहीं है । चूँकि अद्वैतवादी चिन्तक शरीर के ज्ञाता को एक मानते हैं, अतएव उनके विचार से परमात्मा तथा जीवात्मा में कोई अन्तर नहीं है । इसका स्पष्टीकरण करने के लिए भगवान् कहते हैं कि वे प्रत्येक शरीर में परमात्मा-रूप में विद्यमान हैं । वे जीवात्मा से भिन्न हैं, वे पर हैं, दिव्य हैं । जीवात्मा किसी विशेष क्षेत्र कार्यों को भोगता है, लेकिन परमात्मा किसी सीमित भोक्ता के रूप में या शारीरिक कर्मों में भाग लेने वाले के रूप में विद्यमान नहीं रहता, अपितु साक्षी, अनुमतिदाता तथा परम भोक्ता के रूप में स्थित रहता है । उसका नाम परमात्मा है, आत्मा नहीं । वह दिव्य है । अतः बिलकुल स्पष्ट है कि आत्मा तथा परमात्मा भिन्न-भिन्न हैं । परमात्मा के हाथ-पैर सर्वत्र रहते हैं, लेकिन जीवात्मा के ऐसा नहीं होता । चूँकि परमात्मा परमेश्वर है, अतएव वहअन्दर से जीव की भौतिक भोग की आकांक्षा पूर्ति की अनुमति देता है । परमात्मा की अनुमति के बिना जीवात्मा कुछ भी नहीं कर सकता । जीव भुक्त है और भगवान् भोक्ता या पालक हैं । जीव अनन्त हैं और भगवान् उन सबमें मित्र-रूप में निवास करता है । तथ्य यह है कि प्रत्येक जीव परमेश्वर का नित्य अंश है और दोनों मित्र रूप में घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित हैं । लेकिन जीव में परमेश्वर आदेश को अस्वीकार करने की, प्रकृति पर प्रभुत्व जताने के उद्देश्य से स्वतन्त्रतापूर्वक कर्म करने की प्रवृत्ति पाई जाती है । चूँकि उसमें यह प्रवृत्ति होती है, अतएव वह परमेश्वर की तटस्था शक्ति कहलाता है । जीव या तो भौतिक शक्ति में या आध्यात्मिक शक्ति में स्थित हो सकता है । जब तक वह भौतिक शक्ति द्वारा बद्ध रहता है, तब तक परमेश्वर मित्र रूप में परमात्मा की तरह उसके भीतर रहते हैं, जिससे उसे आध्यात्मिक शक्ति में वापस ले जा सकें । भगवान् उसे आध्यात्मिक शक्ति में वापस ले जाने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं, लेकिन अपनी अल्प स्वतन्त्रता केकारण जीव निरन्तर आध्यात्मिक प्रकाश की संगति ठुकराता है । स्वतन्त्रता का यह दुरोपयोग ही बद्ध प्रकृति में उसके भौतिक संघर्ष का कारण है ।

तात्पर्य

अतएव भगवान् निरन्तर बाहर तथा भीतर से आदेश देते रहते हैं । बाहर से वे भगवद्गीता उपदेश देते हैं और भीतर से वे जीव को यह विश्वास दिलाते हैं कि भौतिक क्षेत्र में उसके कार्यकलाप वास्तविक सुख के लिए अनुकूल नहीं है । उनका वचन है 'इसे त्याग दो और मेरे प्रति श्रद्धा करो । तभी तुम सुखी होगे ।' इस प्रकार जो बुद्धिमान व्यक्ति परमात्मा में अथवा भगवान् मेंश्रद्धा रखता है, वह सच्चिदानन्दमय जीवन की ओर प्रगति करने लगता है ।

24.

bhaktiprasad.in

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह |
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते || 13.24 ||

जो व्यक्ति प्रकृति, जीव तथा प्रकृति के गुणों की अन्तःक्रिया से सम्बन्धित इस विचारधारा को समझ लेता है, उसे मुक्ति की प्राप्ति सुनिश्चित है । उसकी वर्तमान स्थिति चाहे जैसी हो, यहाँ पर उसका पुनर्जन्म नहीं होगा ।

One who understands this philosophy concerning material nature, the living entity and the interaction of the modes of nature is sure to attain liberation. He will not take birth here again, regardless of his present position.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

प्रकृति, परमात्मा, आत्मा तथा इनके अन्तःसम्बन्ध की स्पष्ट जानकारी हो जाने पर मनुष्य मुक्त होने का अधिकारी बनता है और वह इस भौतिक प्रकृति में लौटने के लिए बाध्य हुए बिना वैकुण्ठ वापस चले जाने अधिकारी बन जाता है । यह ज्ञान का फल है । ज्ञान यह समझने के लिए है कि दैवयोग से जीव इस संसार में आ गिरा है । उसे प्रामाणिक व्यक्तियों, साधु-पुरुषों तथा गुरु की संगति में निजी प्रयास द्वारा अपनी स्थिति समझनी है, और तब जिस रूप में भगवान् ने भगवद्गीता कही है, उसे समझ कर आध्यात्मिक चेतना या कृष्णभावनामृत को प्राप्त करना है । तब यह निश्चित है कि वह संसार में फिर कभी नहीं आ सकेगा, वह सच्चिदानन्दमय जीवन बिताने के लिए वैकुण्ठ-लोक भेज दिया जायेगा ।

25.

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना |
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे || 13.25 ||

bhaktiprasad.in

कुछ लोग परमात्मा को ध्यान के द्वारा अपने भीतर देखते हैं, तो दूसरे लोग ज्ञान के अनुशीलन द्वारा और कुछ ऐसे हैं जो निष्काम कर्मयोग द्वारा देखते हैं ।

That Supersoul is perceived by some through meditation, by some through the cultivation of knowledge, and by others through working without fruitive desire.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

भगवान् अर्जुन को बताते हैं कि जहाँ तक मनुष्य द्वारा आत्म-साक्षात्कार की खोज का प्रश्न है, बद्ध जीवों की दो श्रेणियाँ हैं । जो लोग नास्तिक, अज्ञेयवादी तथा संशयवादी हैं, वे आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन हैं । किन्तु अन्य लोग, जो आध्यात्मिक जीवन सम्बन्धी अपने ज्ञान के प्रति श्रद्धावान हैं, वे आत्मदर्शी भक्त, दार्शनिक तथा निष्काम कर्मयोगी कहलाते हैं । जो लोग सदैव अद्वैतवाद की स्थापना करना चाहते हैं, उनकी भी गणना नास्तिकों एवं अजेयवादियों में की में की जाती है । दूसरे शब्दों में, केवल भगवद्भक्त ही आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त होते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि इस प्रकृति के भी परे वैकुण्ठ-लोक तथा भगवान् है, जिसका विस्तार परमात्मा के रूप में प्रत्येक व्यक्ति में हुआ में, और वे सर्वव्यापी है । निस्सन्देह कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो ज्ञान के अनुशीलन द्वारा भगवान् को समझने का प्रयास करते हैं । इन्हें श्रद्धावानों की श्रेणी में गिना जा सकता है । सांख्य दार्शनिक इस भौतिक जगत का विश्लेषण २४ तत्त्वों के रूप में करते हैं, और वे आत्मा को पच्चीसवाँ तत्त्व मानते हैं । जब वे आत्मा की प्रकृति को भौतिक तत्त्वों से परे समझने में समर्थ होते हैं, तो वे यह भी समझ जाते हैं कि आत्मा के भी ऊपर भगवान् है, और वह छब्बीसवाँ तत्त्व है । इस प्रकार वे भी क्रमशः कृष्णभावनामृत की भक्ति के स्तर तक पहुँच जाते हैं । जो लोग निष्काम भाव से कर्म करते हैं,उनकी भी मनोवृत्ति सही होती है । उन्हें कृष्णभावनामृत की भक्ति के पद तक बढ़ने का अवसर दिया जाता है | यहाँ पर कहा गया है कि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनकी चेतना शुद्ध होती है,और वे ध्यान द्वारा परमात्मा को खोजने का प्रयत्न करते हैं, और जब वे परमात्मा को अपने अन्दर खोज लेते हैं, तो वे दिव्य पद को प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार अन्य लोग हैं, जो ज्ञान के अनुशीलन द्वारा परमात्मा को जानने का प्रयास करते हैं । कुछ ऐसे भी हैं जो हठयोग द्वारा, अपने बालकों जैसे क्रियाकलापों द्वारा, भगवान् को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं ।

26.

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते |
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः || 13.26 ||

bhaktiprasad.in

ऐसे भी लोग हैं जो यद्यपि आध्यात्मिक ज्ञान से अवगत नहीं होते पर अन्यों से परम पुरुष के विषय में सुनकर उनकी पूजा करने लगते हैं । ये लोग भी प्रामाणिक पुरुषों सेश्रवण करने की मनोवृत्ति होने के कारण जन्म तथा मृत्यु पथ को पार कर जाते हैं ।

Again there are those who, although not conversant in spiritual knowledge, begin to worship the Supreme Person upon hearing about Him from others. Because of their tendency to hear from authorities, they also transcend the path of birth and death.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यह श्लोक आधुनिक समाज पर विशेष रूप से लागू होता है,क्योंकि आधुनिक समाज में आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती । कुछ लोग नास्तिक प्रतीत होते हैं, तो कुछ अजेयवादी तथा दार्शनिक, लेकिन वास्तव में इन्हें दर्शन का कोई ज्ञान नहीं होता । जहाँ तक सामान्य व्यक्ति की बात है, यदि वह पुण्यात्मा है, तो श्रवण द्वारा प्रगति कर सकता है । यह श्रवण विधि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, श्रवण द्वारा प्रगति कर सकता है । यह श्रवण विधि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । आधुनिक जगत में कृष्णभावनामृत का उपदेश वाले भगवान् चैतन्य ने श्रवण पर अत्यधिक बल दिया था, क्योंकि यदि सामान्य व्यक्ति प्रामाणिक स्त्रोतों से केवल श्रवण करे, तो वह प्रगति कर सकता है - विशेषतया चैतन्य महाप्रभु के अनुसार यदि वह हरे कृष्ण, हरे कृष्ण,कृष्ण,कृष्ण, हरे, हरे / हरे राम, हरे राम, राम, राम, हरे, हरे - दिव्य ध्वनि को सुने । इसीलिए कहा गया है कि सभी व्यक्तियों को सिद्ध पुरुषों से श्रवण करने का लाभ उठाना चाहिए, और इस तरह क्रम से प्रत्येक वस्तु समझने में समर्थ बनना चाहिए । तब निश्चित रूप से परमेश्वर की पूजा हो सकेगी । भगवान् चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि इस युग में मनुष्य को अपना पद बदलने की आवश्यकता नहीं है ,अपितु उसे चाहिए कि वह मनोधार्मिक तर्क द्वारा परमसत्य को समझने के प्रयास को त्याग दे । उसे उन व्यक्तियों का दास बनना चाहिए , जिन्हें परमेश्वर का ज्ञान है । यदि कोई इतना भाग्यशाली हुआ कि उसे शुद्ध शुद्ध भक्त की शरण मिल सके और वह उससे आत्म-साक्षात्कार के विषय में श्रवण करके उसके पदचिन्हों पर चल सके, तो उसे क्रमशः शुद्ध भक्त का पद प्राप्त हो जाता है । इस श्लोक में श्रवण विधि पर विशेष रूप से बल दिया गया है, और यहसर्वथा उपयुक्त है | यद्यपि सामान्य व्यक्ति तथाकथित दार्शनिकों की भाँति प्रायः समर्थ नहीं होता, लेकिन प्रामाणिक व्यक्ति श्रद्धापूर्वक श्रवण करने से इस भवसागर को पार करके भगवद्धाम वापस जाने में उसे सहायता मिलेगी ।

27.

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् |
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ || 13.27 ||

bhaktiprasad.in

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ! यह जान लो कि चर तथा अचर जो भी तुम्हें अस्तित्व में दीख रहा है, वह कर्मक्षेत्र तथा क्षेत्र के ज्ञाता का संयोग मात्र है ।

O chief of the Bhāratas, whatever you see in existence, both moving and unmoving, is only the combination of the field of activities and the knower of the field.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

इस श्लोक में ब्रह्माण्ड की सृष्टि के भी पूर्व से अस्तित्व में रहने वाली प्रकृति तथा जीव दोनों की व्याख्या की गई है । जो कुछ भी उत्पन्न किया जाता है, वह जीव तथा प्रकृति का संयोग मात्र होता है । वृक्ष, पर्वत आदि ऐसी अनेक अभिव्यक्तियाँ हैं, जो गतिशील नहीं हैं । इनके साथ ही ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं, जो गतिशील हैं और ये सब भौतिक प्रकृति तथा परा प्रकृति अर्थात् जीव के संयोग मात्र हैं । परा प्रकृति, जीव के स्पर्श के बिना कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता । भौतिक प्रकृति तथा आध्यात्मिक प्रकृति का सम्बन्ध निरन्तर चल रहा है और यह संयोग परमेश्वर द्वारा सम्पन्न कराया जाता है । अतएव वे ही पर तथा अपरा प्रकृतियों के नियामक हैं । अपरा प्रकृति उनके द्वारा सृष्ट है और परा प्रकृति उस अपरा प्रकृति में रखी जाती है । इस प्रकार सारे कार्य तथा अभिव्यक्तियाँ घटित होती हैं ।

28.

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वम् |
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति || 13.28 ||

bhaktiprasad.in

जो परमात्मा को समस्त शरीरों में आत्मा के साथ देखता है और जो यह समझता है कि इस नश्वर शरीर के भीतर न तो आत्मा, न ही परमात्मा कभी भी विनष्ट होता है, वही वास्तव में देखता है |

One who sees the Supersoul accompanying the individual soul in all bodies and who understands that neither the soul nor the Supersoul is ever destroyed, actually sees.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जो व्यक्ति सत्संगति से तीन वस्तुओं को - शरीर, शरीर का स्वामी या आत्मा, तथा आत्मा के मित्र को - एकसाथ संयुक्त देखता है, वही सच्चा ज्ञानी है | जब तक आध्यात्मिक विषयों के वास्तविक ज्ञाता की संगति नहीं मिलती, तब तक कोई इन तीनों वस्तुओं को नहीं देख सकता | जिन लोगों की ऐसी संगति नहीं होती, वे अज्ञानी हैं, वे केवल शरीर को देखते हैं, और जब यह शरीर विनष्ट हो जाता है, तो समझते हैं कि सब कुछ नष्ट हो गया | लेकिन वास्तविकता यह नहीं है | शरीर के विनष्ट होने पर आत्मा तथा परमात्मा का अस्तित्व बना रहता है, और वे अनेक विविध चर तथा अचर रूपों में सदैव जाते रहते हैं | कभी-कभी संस्कृत शब्द परमेश्वर का अनुवाद जीवात्मा के रूप में किया जाता है, क्योंकि आत्मा ही शरीर का स्वामी है और शरीर के विनाश होने पर वह अन्यत्र देहान्तरण कर जाता है | इस तरह वह स्वामी है | लेकिन कुछ लोग इस परमेश्वर शब्द का अर्थ परमात्मा लेते हैं | प्रत्येक दशा में परमात्मा तथा आत्मा दोनों रह जाते हैं | वे विनष्ट नहीं होते | जो इस प्रकार देख सकता है, वही वास्तव में देख सकता है कि क्या घटित हो रहा है |

29.

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् |
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् || 13.29 ||

bhaktiprasad.in

जो व्यक्ति परमात्मा को सर्वत्र तथा प्रत्येक जीव में समान रूप से वर्तमान देखता है, वह अपने मन के द्वारा अपने आपको भ्रष्ट नहीं करता | इस प्रकार वह दिव्य गन्तव्य को प्राप्त करता है |

One who sees the Supersoul in every living being and equal everywhere does not degrade himself by his mind. Thus he approaches the transcendental destination.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जीव, अपना भौतिक अस्तित्व स्वीकार करने के कारण, अपने आध्यात्मिक अस्तित्व से पृथक् हो गया है | किन्तु यदि वह यह समझता है कि परमेश्वर अपने परमात्मा स्वरूप में सर्वत्र स्थित हैं, अर्थात् यदिवह भगवान् की उपस्थिति प्रत्येक वस्तु में देखता है, तो वह विघटनकारी मानसिकता से अपने आपको नीचे नहीं गिराता, और इसलिए वह क्रमशः वैकुण्ठ-लोक की ओर बढ़ता जाता है | सामान्यतया मन इन्द्रियतृप्तिकारी कार्यों में लीन रहता है, लेकिन जब वही मन परमात्मा की ओर अन्मुख होता है, तो मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान में आगे बढ़ जाता है |

30.

bhaktiprasad.in

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः |
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति || 13.30 ||

जो यह देखता है कि सारे कार्य शरीर द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, जिसकी उत्पत्ति प्रकृति से हुई है, और जो देखता है कि आत्मा कुछ भी नहीं करता, वही यथार्थ में देखता है |

One who can see that all activities are performed by the body, which is created of material nature, and sees that the self does nothing, actually sees.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

यह शरीर परमात्मा के निर्देशानुसार प्रकृति द्वारा बनाया गया है और मनुष्य के शरीर के जितने भी कार्य सम्पन्न होते हैं, वे उसके द्वारा नहीं किये जाते | मनुष्य जो भी करता है, चाहे सुख के लिए करे, या दुख के लिए, वह शारीरिक रचना के कारण उसे करने के लिए बाध्य होता है | लेकिन आत्मा इन शारीरिक कार्यों से विलग रहता है | यह शरीर मनुष्य के पूर्व इच्छाओं के अनुसार प्राप्त होता है | इच्छाओं की पूर्ति के लिए शरीर मिलता है, जिससे वह इच्छानुसार कार्य करता है | एक तरह से शरीर एक यंत्र है, जिसे परमेश्वर ने इच्छाओं की पूर्ति के लिए निर्मित किया है | इच्छाओं के कारण ही मनुष्य दुख भोगता है या सुख पाता है | जब जीव में यह दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है, तो वह शारीरिक कार्यों से पृथक् हो जाता है | जिसमें ऐसी दृष्टि आ जाती है, वही वास्तविक द्रष्टा है |

31.

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति |
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा || 13.31 ||

bhaktiprasad.in

जब विवेकवान् व्यक्ति विभिन्न भौतिक शरीरों के कारण विभिन्न स्वरूपों को देखना बन्द कर देता है, और यह देखता है कि किस प्रकार जीव सर्वत्र फैले हुए हैं, तो वह ब्रह्म-बोध को प्राप्त होता है |

When the prudent person stops seeing the different forms because of the different material bodies, and sees how the living entities are spread everywhere, then he attains the realization of Brahman.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

जब मनुष्य यह देखता है कि विभिन्न जीवों के शरीर उस जीव की विभिन्न इच्छाओं के कारण उत्पन्न हुए हैं और वे आत्मा से किसी तरह सम्बद्ध नहीं हैं, तो वह वास्तव में देखता है | देहात्मबुद्धि के कारण हम किसी को देवता, किसी को मनुष्य, कुत्ता, बिल्ली आदि के रूप में देखते हैं | यह भौतिक दृष्टि है, वास्तविक दृष्टि नहीं है | यह भौतिक भेदभाव देहात्मबुद्धि के कारण है | भौतिक शरीर के विनाश के बाद आत्मा एक रहता है | यह आत्मा भौतिक प्रकृति के सम्पर्क से विभिन्न प्रकार के शरीर धारण करता है | जब कोई इसे देख पाता है, तो उसे आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त होती है | इस प्रकार जो मनुष्य, पशु, ऊँच, नीच आदि भेदभाव से मुक्त हो जाता है उसकी चेतना शुद्ध हो जाती है और वह अपने आध्यात्मिक स्वरूप में कृष्णभावनामृत विकसित करने में समर्थ होता है | तब वह वस्तुओं को जिस रूप में देखता है, उसे अगले श्लोक में बताया गया है |

32.

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः |
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते || 13.32 ||

bhaktiprasad.in

शाश्वत दृष्टिसम्पन्न लोग यह देख सकते हैं कि अविनाशी आत्मा दिव्य, शाश्वत तथा गुणों अतीत है | हे अर्जुन! भौतिक शरीर के साथ सम्पर्क होते हुए भी आत्मा न तो कुछ करता है और न लिप्त होता है |

Those with the vision of eternity can see that the soul is transcendental, eternal, and beyond the modes of nature. Despite contact with the material body, O Arjuna, the soul neither does anything nor is entangled.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

ऐसा प्रतीत होता है कि जीव उत्पन्न होता है, क्योंकि भौतिक शरीर का जन्म होता है | लेकिन वास्तव में जीव शाश्वत है, वह उत्पन्न नहीं होता और शरीर में स्थित रह कर भी, वह दिव्य तथा शाश्वत रहता है | इस प्रकार वह विनष्ट नहीं किया जा सकता | वह स्वभाव से आनन्दमय है | वह किसी भौतिक कार्य में प्रवृत्त नहीं होता | अतएव भौतिक शरीरों के साथ सम्पर्क होने से जो कार्य सम्पन्न होते हैं, वे उसे लिप्त नहीं कर पाते |

33.

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते |
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते || 13.33 ||

bhaktiprasad.in

यद्यपि आकाश सर्वव्यापी है, किन्तु अपनी सूक्ष्म प्रकृति के कारण, किसी वस्तु से लिप्त नहीं होता | इसी तरह ब्रह्मदृष्टि में स्थित आत्मा, शरीर में स्थित रहते हुए भी, शरीर से लिप्त नहीं होता |

The sky, due to its subtle nature, does not mix with anything, although it is all-pervading. Similarly, the soul, situated in Brahman vision, does not mix with the body, though situated in that body.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

वायु जल, कीचड़, मल तथा अन्य वस्तुओं में प्रवेश करती है, फिर भी वह किसी वस्तु से लिप्त नहीं होती | इसी प्रकार से जीव विभिन्न प्रकार के शरीरों में स्थित होकर भी अपनी सूक्ष्म प्रकृति के कारण उनसे पृथक बना रहता है | अतः इन भौतिक आँखों से यह देख पाना असम्भव है कि जीव किस प्रकार इस शरीर के सम्पर्क में है और शरीर के विनष्ट हो जाने पर वह उससे कैसे विलग हो जाता है | कोई भी विज्ञानी इसे निश्चित नहीं कर सकता |

34.

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः |
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत || 13.34 ||

bhaktiprasad.in

हे भरतपुत्र! जिस प्रकार सूर्य अकेले इस सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार शरीर के भीतर स्थित एक आत्मा सारे शरीर को चेतना से प्रकाशित करता है |

O son of Bharata, as the sun alone illuminates all this universe, so does the living entity, one within the body, illuminate the entire body by consciousness.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

चेतना के सम्बन्ध में अनेक मत हैं | यहाँ पर भगवद्गीता में सूर्य तथा धूप का उदाहरण दिया गया है | जिस प्रकार सूर्य एक स्थान पर स्थित रहकर ब्रह्माण्ड को आलोकित करता है, उसी तरह आत्मा सूक्ष्म रूप कण शरीर के हृदय में स्थित रहकर चेतना द्वारा शरीर को आलोकित करता है | इस प्रकार चेतना ही आत्मा का प्रमाण है, जिस तरह धूप या प्रकाश सूर्य की उपस्थिति का प्रमाण होता है | जब शरीर में आत्मा वर्तमान रहता है, तो सारे शरीर में चेतना रहती है | किन्तु ज्योंही शरीर से आत्मा चला जाता है त्योंही चेतना लुप्त हो जाती है | इसे बुद्धिमान व्यक्ति सुगमता से समझ सकता है | अतएव चेतना पदार्थ के संयोग से नहीं बनी होती | यह जीव का लक्षण है | जीव की चेतना यद्यपि गुणात्मक रूप से परम चेतना से अभिन्न है, किन्तु परम नहीं है, क्योंकि एक शरीर की चेतना दूसरे शरीर से सम्बन्धित नहीं होती | लेकिन परमात्मा, जो आत्मा के सखा रूप में समस्त शरीरों में स्थित हैं, समस्त शरीरों के प्रति सचेष्ट रहते हैं | परमचेतना तथा व्यष्टि-चेतना में यही अन्तर है |

35.

bhaktiprasad.in

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा |
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् || 13.35 ||

जो लोग ज्ञान के चक्षुओं से शरीर तथा शरीर के ज्ञाता के अन्तर को देखते हैं और भव-बन्धन से मुक्ति की विधि को भी जानते हैं, उन्हें परमलक्ष्य प्राप्त होता है |

One who knowingly sees this difference between the body and the owner of the body and can understand the process of liberation from this bondage, also attains to the supreme goal.

Designed by DigitalWebdia.com

तात्पर्य

इस तेरहवें अध्याय का तात्पर्य यही है कि मनुष्य को शरीर, शरीर के स्वामी तथा परमात्मा के अन्तर को समझना चाहिए | उसे श्लोक ८ से लेकर १२ तक में वर्णित मुक्ति की विधि को जानना चाहिए | तभी वह परमगति को प्राप्त हो सकता है | श्रद्धालु को चाहिए कि सर्वप्रथम वह ईश्वर का श्रवण करने के लिए सत्संगति करे, और धीरे-धीरे प्रबुद्ध बने | यदि गुरु स्वीकार कर लिया जाए, तो पदार्थ तथा आत्मा के अन्तर को समझा जा सकता है और वही अग्रिम आत्म-साक्षात्कार के लिए शुभारम्भ बन जाता है | गुरु अनेक प्रकार के उपदेशों से अपने शिष्यों को देहात्मबुद्धि से मुक्त होने की शिक्षा देता है |उदाहरणार्थ - भगवद्गीता में कृष्ण अर्जुन को भौतिक बातों से मुक्त होने के लिए शिक्षा देते हैं | मनुष्य यह तो समझ सकता है कि यह शरीर पदार्थ है और इसे चौबीस तत्त्वों में विश्लेषित किया जा सकता है; शरीर स्थूल अभिव्यक्ति है और मन तथा मनोवैज्ञानिक प्रभाव सूक्ष्म अभिव्यक्ति हैं | जीवन के लक्षण इन्हीं तत्त्वों की अन्तः-क्रिया (विकार) हैं, किन्तु इनसे भी ऊपर आत्मा और परमात्मा हैं | आत्मा तथा परमात्मा दो हैं | यह भौतिक जगत् आत्मा तथा चौबीस तत्त्वों के संयोग से कार्यशील है | जो सम्पूर्ण भौतिक जगत् की इस रचना को आत्मा तथा तत्त्वों के संयोग से हुई मानता है और परमात्मा की स्थिति को भी देखता है, वही वैकुण्ठ-लोक जाने का अधिकारी बन पाता है | ये बातें चिन्तन तथा साक्षात्कार की हैं | मनुष्य को चाहिए कि गुरु की सहायता से इस अध्याय को भली-भाँति समझ ले |

हरे कृष्ण

|| इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय 'प्रकृति, पुरुष तथा चेतना' का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ||

निताई गौर हरी बोल

DigitalWebdia